Fortnightly per copy Rs. 4/-

03rd July 2023

ओ३म्

आर्य जीवन

ఆర్య జీవన్

संस्कृति संरक्षण व सामाजिक परिवर्तन का संकल्प
హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Website : http://www.aryasabhaapts.org

Narendra Bhavan Telephone : 040 24760030

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month

देहरादून के नगरनिगम सभागार में वैदिक संस्कृति संगोष्ठि

वैदिक संस्कृति संगोष्ठि का दीप जलाकर उद्घाटन करते हुए स्वामी आर्यवेश जी, प्रो. विठ्ठल आर्य मन्त्री सार्वदेशिक सभा उत्तराखण्ड आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष पं. विश्वमित्र जी, आर्य नेता पं. प्रेमप्रकाश शर्मा जी, श्री गोविन्द सिंह भण्डारी जी, स्वामी आदित्य वेश जी, स्वामी योगेश्वरानन्द जी आदि ।

देहरादून नगरनिगम के सभागार में दिनांक 25-6-2023 रविवार को अपरान्ह 3.00 बजे से आयोजित 'वैदिक संस्कृति संगोष्ठि' सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई । कार्यक्रम में आरम्भ में द्रोणस्थली कन्या गुरुकुल, देहरादून की पांच कन्याओं ने समवेत स्वरों से एक गीत प्रस्तुत किया । गीत के शब्द थे

'होते हैं दीदार दाता, होते हैं दीदार दाता, दे दे अब दीदार, ओ मेरे सरताज, ज्योति जले तब मन की '

इस गीत के बाद दीप प्रज्जवलन किया गया । मंचस्थ सभी विद्वानों ने कन्या गुरुकुल की कन्याओं द्वारा मन्त्रोच्चार के मध्य दीपों को प्रज्जवलित किया । दीप प्रज्जवलन के बाद कार्यक्रम का संचालन कर रहे वैदिक विद्वान आचार्य डॉ. धनंजय आर्य जी ने आज के कार्यक्रम की भूमिका पर विस्तार से प्रकाश डाला । उन्होंने कहा कि इस गोष्ठि में वैदिक संस्कृति के मूल ध्येय, इसकी वर्तमान स्थिति तथा इसके भविष्य पर विचार करेंगे । इस कार्यक्रम के सूत्रधार प्रसिद्ध

आर्य विद्वान एवं नेता श्री प्रेम प्रकाश शर्मा जी ने कार्यक्रम की प्रस्ताविकी को पढ़कर प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा कि संस्कृति का तात्पर्य किसी वस्तु व कार्यप्रणाली आदि को परिष्कृत करना होता है। शर्मा जी ने महर्षि दयानन्द के टंकारा में जन्म का उल्लेख किया और तत्कालीन धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर भी प्रकाश डाला। इस प्रस्ताविकी में सरकार से कुछ मांगे भी की गई हैं जिन्हें पढ़कर श्रोताओं को बताया गया। इस प्रस्ताविकी को हम पृथक से एक लेख आदि के द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे।

कार्यक्रम में पधारे उत्तराखण्ड राज्य के पूर्व मुख्यमन्त्री एवं महाराष्ट्र के पूर्व राज्यपाल श्री भगतसिंह कोश्यारी जी ने कहा कि महर्षि दयानन्द जी ऐसे पहले सन्त हुए हैं जिन्होंने अपने समय व उससे पूर्व की देश की परिस्थितियों वा समाज के सभी पक्षों व पहलुओं का सूक्ष्मता से अध्ययन किया था। ऐसा उन्होंने इसलिए किया कि जिससे भारत पुनः विश्वगुरु का स्थान प्राप्त कर सके। उन्होंने अन्य महापुरुषों की भी चर्चा की और उनके देश व समाज को योगदान को रेखांकित किया। श्री कोश्यारी जी ने कहा कि ऋषि दयानन्द पहले महापुरुष थे जिन्होंने जागरण वा समाज सुधार कार्यों को आरम्भ किया। उन्होंने आगे कहा कि सत्य एक होता है जिसे विद्वान अनेक प्रकार से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने कहा कि यदि स्वामी दयानन्द जी न हुए होते तो न जाने देश में कितने लोगों का धर्मान्तरण हो जाता। उन्होंने कहा कि स्वामी दयानन्द जी ने यह बात सबसे अच्छी की कि उन्होंने देश में बालक व कन्याओं की शिक्षा का प्रचार व प्रसार किया जिसका बड़े व्यापक स्तर पर विस्तार उनके अनुयायियों द्वारा किया गया। ऋषि दयानन्द ने देश से अस्पृश्यता को दूर करने का सबसे पहले प्रयास किया था। आर्य समाज अत्यन्त श्रेष्ठ कार्य कर रहा है। उन्होंने इस क्रम में आर्य समाज द्वारा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में किए गए महान कार्यों की चर्चा भी की और कहा कि हमारा मूल संस्कृत में है। संस्कृत हम सब को परस्पर जोड़ती है। उन्होंने इस बात के समर्थन में अपने जीवन के व्यक्तिगत उदाहरण भी प्रस्तुत किए। उन्होंने यू.पी.एस.सी. एवं आई.ए.एस/आई.पी.एस. परीक्षाओं के परिणामों का उल्लेख कर बताया कि इन परिक्षाओं में प्रथम, द्वितीय व तृतीय स्थानों पर कन्याओं ने स्थान प्राप्त किया है। ऋषि दयानन्द ने स्त्री शिक्षा का आरम्भ करते हुए उसके इस परिणाम का शायद अनुमान भी नहीं किया होगा। उन्होंने कहा कि स्कूली शिक्षा में स्वामी दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन चरितों को पढ़ाया जाना चाहिए। अपने वक्तव्य को विराम देते हुए उन्होंने कहा कि ऋषि दयानन्द जी का महापुरुषों में प्रथम स्थान है। आर्य समाज के नेता स्वामी आर्य वेश जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि पांच हजार वर्ष पूर्व हुए महाभारत युद्ध के बाद हमारी संस्कृति का पतन हुआ। महाभारत युद्ध से पूर्व समूचे विश्व में वैदिक धर्म एवं संस्कृति का ही प्रचलन था। स्वामी जी ने कहा कि जिस देश में तप व दीक्षा का प्रचार होता है और लोग इसे जीवन में धारण करते हैं वह देश उन्नति करता है। स्वामी जी ने वेदों से आरम्भ गुण, कर्म व स्वभाव पर आधारित वैदिक वर्ण व्यवस्था पर प्रकाशडाला और बताया कि महाभारत से पूर्व समूचे देश में वर्णव्यवस्था प्रचलित थी। जन्मना जातिवाद का कहीं कोई नाम भी नहीं था। वैदिक संस्कृति बहुत ऊंची संस्कृति

प्रकाश तथा आनन्द

-पं. चमूपति एम.ए.

इससे पूर्व हमने वेद के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि स्वर्ग का एक अर्थ इसी आवागमन के चक्र में आनेवाला सुख का काल है। इस सुखद काल की व्याख्या उन मन्त्रों में है जिन्हें अपने विचार से मौलाना ने अगले अध्यायों में आर्य समाज के मन्तव्यों के विरुद्ध समझकर उपस्थित किया है। आर्य-साहित्य में प्रायरू इस भौतिक जगत् की एक वृक्ष से उपमा दी गई है। यही बात वेद में कही है, जैसे-

"जिस पत्तों से अत्यन्त लदे वृक्ष पर साधक अपनी समस्त इन्द्रियों सहित आनन्दमग्न रहता है, यहाँ सार जगत् का स्वामी परमेश्वर हम अनादि जीवों पर कृपादृष्टि रखे।"

अनुभूतिमय जगत् का आनन्द तपस्वी लेता है। उसकी समस्त इन्द्रियाँ स्वस्थ रहती है। जीवन का वास्तविक आनन्द प्राप्त होता है। वेद में पुनः कहा है-

दो सुन्दर पक्षी, आपस में मिले हुए मित्र एक ही वृक्ष पर बसेरा करते हैं। उनमें से एक सुखद फलों को खाता है दूसरा न खाता हुआ देखता है।

"जिस वृक्ष पर मीठे फल खानेवाले पक्षी निवास करते हैं और सन्तति-विस्तार करते हैं, उसके फल को पूर्वकाल से ही मीठा बताते आए हैं। उसे वह प्राप्त नहीं कर सकता जो अपने भगवान् को नहीं जानता।"

हमारे मौलाना (भगवान् उन्हे कुदृष्टि से बचाए) कभी-कभी बड़े पते की बात कह जाते हैं। फरमाते हैं-"ऐसा लगता है कि यहाँ दो प्रकार के मनुष्य को पक्षियों से उपमा दी गई है। एक पिता (परमेश्वर) को नहीं मानता, यद्यपि यह बैठा बैठा वहीं है, परन्तु वह उस फल को प्राप्त नहीं कर सकता।"

आखिर वेद का कथन है, मौलना जी! इस कथन के सम्बोधन उतने ही है, जितने कोई और। परमेश्वर के कथन को परमेश्वर का भक्त समझ ही लेता वेद के आदेश अत्यन्त स्पष्ट हैं। बुद्धि शुद्ध हो तो शीघ्र समझ में आ जाते हैं। वेद में संसार तथा इस शरीर का नाम अश्वत्थ भी कहा है। (आगे) दो अर्थ होते हैं-प्रथम, कल न रहनेवाला, अर्थात् नश्वर, दूसरा अथ और पुरुषों के अधिकार में रहनेवाला। वेद का आदेश है-

संसार देवताओं के रहने का स्थान है, इसके द्वारा तीसरे (आ) आनन्द के लोक में भक्तों ने मोक्षानन्द, अर्थात् ईश्वर में एकाग्र होने पर नन्द प्राप्त किया किया है।

इसमें स्थिरता के लिए यहाँ 'कृष्ठ' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'कु' अर्थात् शनियमश आधार तथा 'थ' का अर्थ है 'स्थिरता'॥

कि नौका, जिसका लङ्गर भी प्रकाश का था, इस प्रकाशमय जगत् में। वहाँ अमृत का पुष्प, अर्थात् ईश्वर में स्थिरता का पुष्प प्राप्त किया। "मार्ग प्रकाशमय थे, चप्पू प्रकाश के थे, नौकाएँ प्रकाश की थीं, जिससे ईश्वर में स्थिरता का पुष्प प्राप्त किया गया।

यह समाधि की अवस्था है। योगी आनन्द के समुद्र में प्रकाश की नौका में बैठा, तन्मयता का आनन्द ले रहा है। कुष्ठ एक ओषधिका नाम भी है जो क्षयरोग में प्रयुक्त होती है। वेद में उस और भी संकेत कर दिया गया है-

"तुझे उत्पन्न करनेवाली धरती जीवनप्रद है, तुझे पालन करनेवाला प्रकाश (रश्मियाँ) जीवन देनेवाला है।"

"तू ओषधियों में सर्वोत्तम है, जैसे घर के पशुओं में बैल, जैसे वन के पशुओं में सिंह।"

"कुष्ठ अकसीर है, सोम के पास खड़ा है। आध्यात्मिक क्षेत्र में ईश्वर में एकाग्रत अकसीर है। वह श्रद्धा की सखी है। आत्मिक ओषधियों में सिंह है। औषधि के प्राकृतिक प्रमाण के अतिरिक्त ओषधि की प्रशंसा का बौद्धिक प्रमाण भी रोगी को स्वस्थ बनाने में सहायक होता है। वेद के आदेशानुसार, वैद्य अपनी दवाईकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में रोगी के मन में अत्यन्त आशापूर्ण विचार देगा।

अतः कुष्ठ एक तो ओषधि का नाम है, दूसरा ईश्वर में ध्यानावस्था का नाम, जो सहस्रों ओषधियों की एक ओषधि है। वैदिक सूक्तों में शारीरिक एवम् आत्मिक दोनों अक्सीरों की प्रशंसा एक-साथ की गई है, वेद काव्य श्लेपालंकार से अलंकृत है। वैद का यह कथन देखिए-"

"यह संसार देवताओं के रहने का स्थान है। इसके द्वारा तीसरे (आत्मिक) आनन्द का स्थान है, अमृत का आनन्द है। वहाँ कुष्ट (अकसीर) होता है।"

छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है-"यहाँ तीसरे (आत्मिक) प्रकाश के लोक में आनन्द का झरना है, वह अश्वत्थ है, वह अध्यात्म का तत्त्व है।

मौलाना ने अर्थ किया है-"वहाँ पीपल का वृक्ष है, जिससे सोम बहता है। उपनिषद् में कहा है, वह अश्वत्थ है, वह सोम से निकाला गया है। अभिप्राय यह है कि आत्मिक आनन्द ही वास्तविक आनन्द है, शेष सब बाहिर का खेल मात्र है। 'ऐरम्मदीय' का शब्दार्थ है 'अन्न का आनन्द।' का शब्दार्थ है 'अन्न का आनन्द।' उपनिपद् में अन्न से अभिप्राय है भौतिक जगत् इस भौतिक जगत् का सुख भी भक्त ही लेते हैं। विलासिता में डूबे व्यक्ति तो अपना भी विनाश करते हैं, और इस जगत् का भी! विष्टारी यज्ञ की व्याख्या हम इससे पूर्व कर चुके हैं- सन्तति-विस्तार का कर्त्तव्य, अर्थात् गृहस्थाश्रम! वेद का आदेश है-

"यह यज्ञों में विस्तृत एवं महान् है। सन्तति-तिस्तार का यज्ञ करके (विवाह करके) मनुष्य सुख के लोक में प्रविष्ट होता है, सुन्दर कमल, गोल कमल, नीलोफर और उसके बीज को फैलाता है, इस स्वर्गलोक में (गृहस्थाश्रम में) सुख की सब धाराएँ तुझे सब ओर से प्राप्त हों। कमलों से भरे तालाब, मिठास की वर्षा करते हुए सब ओर से तेरे समीप हों।

ऋग्वेद ९।१३ की व्याख्या इससे पूर्व हो चुकी है। "जहाँ देव स्वभाव के नेता रहते हों, उस प्रिय अमृत से मैं सब ओर से सुख प्राप्त करूँ। बड़ा पग लेनेवाले का वही मित्र है। व्यापक प्रभु के चरणों में मधु का उत्स है।"

- शेष पृ. १५ पर

मैक्स मूलर के विचार

भारत विश्व को क्या सिखा सकता है

-कृष्णचन्द्र गर्ग

प्रोफैसर मैक्स मूलर का जन्म सन् १८२३ में जर्मनी में हुआ था । वे एक बड़े दार्शनिक और संस्कृत के बड़े विद्वान थे । उन्होंने हितोपदेश, कठोपनिषद्, केनोपनिषद् तथा मेघदूत का जर्मन भाषा में अनुवाद किया । उन्होंने सायण आचार्य के भाष्य के आधार पर ऋग्वेद का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी किया । पर वेदों के सम्बन्ध में उनके विचार सकारात्मक न थे । महर्षि दयानन्द का भाष्य पढ़ने के बाद वेदों के प्रति उनके विचार बदल गए ।

सन् १८८२ में उन्होंने कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में ऋॐ.१. (ऋड्डइत्त ॐइड्डिण ग्ठज्ञ-ड्ढिट्ठथ) के उम्मीदवारों को भारत के सम्बन्ध में सात भाषण दिए थे । वे भाषण -ऋड्डइत्र-डड्डत्रव ट्टत्र ड्डद दठ्ञट्टड्ड थि- पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए थे । उन भाषणों के विषय तथा कुछ अंश यहाँ दिए जा रहे हैं ।

भाषणों के विषय-

१) भारत हमें क्या सिखा सकता है । २) हिन्दुओं का सत्यवादी चरित्र, ३) संस्कृत साहित्य में मानवीय रुचि, ४) आपत्तियाँ, ५) वेदों की शिक्षा, ६) वैदिकदेवता, ७) वेद और वेदान्त ।

If I were to look over the whole world to find out the country most richly endowed with all the wealth, power and beauty that nature can bestow-in some parts a very paradise on earth-I should point to India. If I were asked under what sky the human mind has most full developed some of its choicest gifts, has most deeply pondered on the greatest problems of life, and has found solutions of some of them which well deserve the attention even of those who have studied Plato and Kant-I should point to India. And if I were to ask myself from what literature we, here in Europe, we who have been nurtured almost exclusively on the thought of Greeks and Romans, and of one Semitric race, the Jewish, may draw that corrective which is most wanted in order to make our inner life more perfet, more comprehensive, more universal, infat more truly human, a life, not for this life only, but a transfigured and eternal life-again I should point to India. (First Lecture)

यदि मैं संसार में किसी ऐसे देष की तलाष करूँ जहाँ प्रकृति ने पृथ्वी के किसी हिस्से में सम्पत्ति, षक्ति और सुन्दरता का वरदान दिया है तो मैं भारत की ओर इंगित करूँगा । यदि मुझसे कोई पूछे कि किस आकाष के नीचे मानव मस्तिष्क ने अपने श्रेष्ठतम वरदानों को अत्यंत पूर्णता से विकसित किया है और जीवन की महानतम समस्याओं पर अत्यन्त गहन चिन्तन किया है और कुछ ऐसे प्रश्नों का हल पा लिया है जो उन लोगों का भी ध्यान आकर्षित कर सकता है, जिन्होंने प्लेटो और काण्ट का अध्ययन किया है-तो मैं भारत की तरफ इषारा करूँगा । और यदि मुझसे कोई पूछे कि हम यूरोप के रहने वालों को, जिन्हें यूनानियों, रोमनों और यहूदियों के विचारों पर लगभग पूरी तरह से पोषित किया गया है, उन्हें किस साहित्य से ऐसी सीख मिलेगी जिसकी बहुत जरूरत है ताकि हम अपना आन्तरिक जीवन अधिक पूर्ण, अधिक व्यापक, अधिक वैष्विक, वास्तव में अधिक पूर्ण, अधिक व्यापक, अधिक वैष्विक, वास्तव में अधिक मानवीय और सिर्फ वर्तमान जीवन बल्कि एक षाष्वत जीवन बना सकने वाली सीख प्राप्त कर सकते हैं, तो मैं फिर से भारत की ओर इषारा करूँगा ।

I maintain then that for a study of man, or, if you like, for a study of Aryan humanity, there is nothing in the world equal in importance with the Veda. I maintain that to everybody who cares for himself, for his ancestors, for his history, or for his intellectual development, a study of Vedic literature is indispensable; and that, as an element of liberal education, it is far more important and fare more improving than the reigns of Babylonian and Persian Kings. (Third Lecture)

मेरा मानना है कि मानव के अध्ययन के लिए या यदि आप चाहें तो आदि मानवता के अध्ययन के लिए संसार में वेद के समान महत्त्वपूर्ण कुछ नहीं है । मेरा मत है कि जो भी व्यक्ति अपने लिए अपने पूर्वजों के लिए, अपने इतिहास के लिए या अपने पूर्वजों के लिए, अपने इतिहास के लिए या अपने बौद्धिक विकास के लिए चिन्ता करता है तो वैदिक साहित्य का अध्ययन अपरिहार्य है और एक उदार शिक्षा के तत्त्व के रूप में यह बेबीलोनियन और ईरानी राजाओं के शासनकालों से बहुत ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ।

I do not mean to say that everybody who wishes to know how the human race came to be what it is, how language came to be what it is, how religion came to be what it is, how manners, customs, laws and forms of government came to be what they are, how we ourselves came to be what we are, must learn Sanskrit and must study Vedic Sanskrit. But I do believe that not to know what a study of Sanskrit and particularly a study of the Veda, has already done for illuminating the darkest passages in the history of the human mind, of that mind on which wer ourselves are feeing and lving, is a misfortune, or, at all events, a loss, just as I should count it a losss to have passed through life without knowing something, however little, of the geological formation of the earth, or of the sun, and the moon and the stars and of thought, or the will, or the law, that govern their movements. (Seventh

-शेष पृ. १० पर

हमारे जीवन में माता-पिता की भूमिका एवं महत्त्व

-ज्योति ढांडा

सीख देते हैं, संस्कार देते हैं। स्वच्छन्द उड़ान के लिए पंखों को विस्तार देते हैं धरती पर देव स्वरूप हैं माता-पिता जो हमें श्रेष्ठ जीवन का उपहार देते हैं ।।

किसी कवि की उपर्युक्त पंक्तियां केवल भावुकता भरी शब्दावली नहीं है, जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति हैं। सनातन आर्य संस्कृति के अनुसार हमारा यह जीवन न तो प्रथम है और न ही अन्तिम। यह जीवन के शाश्वत अनादि अनन्त प्रवाह का एक अंग मात्र है। उस चिरन्तन शाश्वत प्रवाह की निरन्तरता को गतिमान रखने की महती भूमिका परमेश्वर ने माता-पिता को सौंपी है। वे शारिक वंशानुगत प्रभावों को ही न पीढ़ी में स्थानान्तरित नहीं करते, अपितु वैचारिक बीज के रूप में संस्कारों, विचारों की अकूत सम्पदा को सुरक्षित, संरक्षित भी करते हैं।

परिवार एक दैवी अवधारणा : आर्य संस्कृति में परिवार व्यक्ति और समाज के मध्य की अनुपम संकल्पना, परिकल्पना है। व्यक्ति का अस्तित्व केवल अपने लिए नहीं है, उसके अस्तित्व के लिए न केवल मनुष्य अपितु पशु-पक्षियों और प्रकृति का भी योगदान है, इसलिए उसकी बौद्धिक क्षमताओं का उपयोग समाज को उन्नत बनाने के लिए हो, यही उसके होने की सार्थकता है। इस सामूहिकता की प्रथम पाठशाला परिवार ही है जो मानव इतिहास की एक उज्जवल व्यवस्था है। माता-पिता परिवार के सन्चालक और मुखिया के रूप में व्यक्ति और समाज के बीच में इस अद्भुत और वैज्ञानिक संरचना के सूत्रधार के रूप में महती भूमिका निभाते हैं।

चार आश्रम : आर्य संस्कृति में मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में व्यवस्थित किया गया है-ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, बानप्रस्थ और संन्यास। यह मनुष्य जीवन की सफलता की व्यावहारिक व्यवस्था है। गृहस्थ को सभी आश्रमों का आधार कहा गया है। मनुस्मृति लिखा है-

यथा नदी नदा सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संसस्थितिम् ॥
६/९०

जिस प्रकार सभी नदी नाले समुद्र में आश्रय पाते हैं, ऐसे ही सभी अन्य आश्रमों का आधार गृहस्थाश्रम ही है। ब्रह्मचर्य का विधान गृहस्थ की तैयारी के लिए ही किया जाता है। मनुस्मृति में तो यहां तक लिखा है कि चारों वेद, दो वेद या कम से कम एक वेद पढ़ने के पश्चात् ही ब्रह्मचारी गृहस्थ का अधिकारी होता है।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रतम्।
अविलुप्तब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥३/२

इसका आज की भाषा में यह अर्थ है कि गृहस्थ में आने वाले स्त्री व पुरुष दोनों पूर्ण विद्या प्राप्त करके ही एक दूसरे का वरण करते हैं। इससे गृहस्थ के महत्त्व को भली भान्ति समझा जा सकता है।

गहस्थ का उद्देश्य : गृहस्थाश्रम का उद्देश्य क्या है ? आर्य संस्कृति में मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण होते हैं-देव ऋण, पितृ ऋण व ऋषि ऋण। पितृ ऋण का अर्थ यह है कि हमें पितरों, पूर्वजों की कृपा से ही यह मनुष्य जन्म मिला है। हम उत्तम सन्तान का निर्माण करके पूर्वजों से प्राप्त संस्कार व प्रजातन्तु का छेदन न करें। हम न केवल सन्तान उत्पत्ति करें, अपितु उसे उत्तम संस्कार देकर श्रेष्ट परम्पराओं की रक्षा भी करें। इस प्रकार हम पितृ ऋण से अऋण हो सकते हैं। गृहस्थ का वरण उत्तम सन्तान के निर्माण के लिए ही किया जाता है। आर्य संस्कृति के अनुसार गृहस्थ का यही मुख्य उद्देश्य है।

उत्तम सन्तान का निर्माण : आर्य संस्कृति में माता-पिता का कर्त्तव्य पशुओं की तरह केवल सन्तान पैदाकर देना नहीं है। माता-पिता के लिए सन्तान 'पैदा करना' की अपेक्षा सन्तान का 'निर्माण करना' वाक्यांश अधिक उपयोगी है। ब्रह्मचारी को दीक्षान्त के समय गुरु अन्य आदेशों के साथ यह आदेश भी करता है कि-'प्रजातन्तुम् मा व्यवत्छेत्सी' सन्तान के प्रवाह को मत तोड़ो। अतएव विवाह संस्कार के समय वर-वधू का पाणिग्रहण करते हुए कहता है-'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्' मैं सब प्रकार के सौभाग्य के लिए तुम्हारा हस्त ग्रहण करता हूँ। सब प्रकार के सौभाग्य में सन्तान प्राप्ति का सौभाग्य भी सम्मिलित है।

हमारे जीवन में माता-पिता की भूमिका : माता और पिता की भूमिका केवल एक प्रजनक के रूप में ही नहीं है। यह आर्य संस्कृति की अन्यतम विशेषता है कि उसमें माता-पिता को सर्वोच्च सम्मान दिया गया है। महाभारत में यक्ष और युधिष्टिर के प्रश्नोत्तर का रोचक संवाद है। वहाँ पर युधिष्ठिर यक्ष से अनेक प्रश्न पूछते हैं। यक्ष का प्रश्न है।

का गुरुतरा भूमेः ? अर्थात् भूमि से भी भारी कौन है ? युधिष्ठिर उत्तर देते हैं-माता गुरुतरा भूमेः ।। =माता पृथिवी से भी भारी है।

यक्ष का अन्य प्रश्न था-कः उच्चतरुश्च खात् ? आकाश से भी ऊँचा कौन है ?

युधिष्ठिर इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-पिता उच्चतरश्च खात् ।। अर्थात् पिता आकाश से भी ऊँचा है।

इसी प्रकार का एक पौराणिक प्रकरण शिवजी का है। दोनों पुत्रों-कातिकिय एवं गणेश को पृथिवी की परिक्रमा करने को कहा गया। कातिकिय पृथिवी की परिक्रमा करने निकल पड़े। गणेश जी ने माता पार्वती और शिवजी की परिक्रमा कर ली और कहा कि माता-पिता की प्रदक्षिण

पृथिवी की प्रदक्षिणा से कम नहीं है। उनकी बात को सही माना गया, इस से आर्य संस्कृति में माता-पिता के स्थान का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में कहा गया है-

मातृमान् पितृमान् आचार्यमान् पुरुषो वेद ॥

जिसके उत्तम माता, पिता और आचार्य होते हैं, वह सन्तान ही उत्तम श्रेष्ठ मनुष्य बनता है। उपनिषद् में ही एक स्थान पर आचार्य उपदेश करता है-

मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव॥

अर्थात् उत्तम माता, पिता और आचार्य ही सच्चे देव होते हैं। इसमें कोई मतभेद नहीं हो सकता क्यों कि माता-पिता देव के रूप में जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त देते ही देते रहते हैं।

माता की भूमिका :

शास्त्रों में माता को सन्तान की निर्मात्री कहा गया है। माता निर्माता भवति॥ माता अपने गर्भ में सन्तान का सुरक्षित निर्माण करती है। अन्य विचारधाराओं से इतर आर्य संस्कृति में सन्तान के निर्माण में माता की भूमिका गर्भाधान से ही शुरू हो जाती है। आर्य संस्कृति में मनुष्य के निर्माण के लिए १६ संस्कारों की संकल्पना की गई है। यह ध्यान देने की बात है कि उनमें से तीन संस्कार तो बच्चे के जन्म लेने से पहले ही किए जाते हैं। माता अपने शरीर के अंश से बालक का पोषण करती है। उसका भोजन सन्तान का भोजन बनता है। उसके विचार नवजात के विचार बनते हैं और उसके संस्कार नवजात के संस्कार बनते है।

आर्य संस्कृति में गर्भाधान एक दैवी कर्तव्य माना जाता है। ऐसे समय में मां जिस प्रकार के संस्कार अपनी सन्तान को देना चाहे, दे सकती है। गर्भावस्था में माता द्वारा दिए गए संस्कारों का प्रभाव जीवन भर बना रहता है। एक पौराणिक कथा के अनुसार अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश करने का ज्ञान अपनी माता के गर्भ में ही प्राप्त कर लिया था। ऐतिहासिक विवरणों के अनुसार छत्रपति शिवाजी के जीवन पर सबसे अधिक प्रभाव उनकी माता जीजाबाई का था। अपने बच्चे के उपकार के लिए माता अपने प्रिय भोजन का भी प्रसन्नतापूर्वक त्याग कर देती है। आर्य महिला के लिए सन्तान उत्पन्न करना पुण्य और सौभाग्य माना जाता है। वह अपनी सन्तान की उत्तमता के लिए हर प्रकार के कष्ट सहन करती है। बच्चे को उत्पन्न करते समय वह इतना कष्ट सहन करती है कि इसे स्त्री का पुनर्जन्म माना जाता है। अतएव संस्कृति में माता को पूजनीय माना जाता है, वह जन्म देने वाली जगज्जननी माता है। वह वैदिक काल से मातृ-शक्ति के रूप में सुविख्यात है जिसने ऋषियों, मुनियों को जन्म दिया तथा राम, कृष्ण, महावीर, बुद्ध, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, महात्मा गाँधी एवं श्री अरविन्द जैसी महान आत्माओं को अपनी गोदी में श्रेष्ठ संस्कार प्रदान किए।

धर्मशास्त्रों में माता को बहुत ऊँचा दर्जा दिया गया है।

नास्ति मात्रा समं तीर्थं नास्ति मात्रा समं प्रियः। नास्ति मात्रासमं पूज्या नास्ति मात्रासमं गतिः॥

माता के समान कोई तीर्थ नहीं है, जिसने हमें शरीर रूपी नौका देकर और सुन्दर विचारों के चप्पू देकर सन्सार सागर से पार उतरने के लिए हमारा मार्ग खोल दिया हैं। माता के समान कोई प्रिय और पूज्य नहीं, जिसने अपने जीवन के सारे सुख हमें सुखी रखने के लिए न्यौछावर कर दिए। जन्म से लेकर किशोरावस्था तक हमारा लालन पालन करने में मां ने कितने कष्ट उठाए होंगे, कभी बैठ कर याद कर लें। जिस व्यक्ति की मां जीवित है उसको कहीं दूसरे तीर्थों पर जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि असली तीर्थ जिससे दुःखसागर से पार उतर जाएँ-माता, पिता, आचार्य, वृद्धों और विद्वानों की सेवा तथा सत्य भाषण, विद्या तथा सत्संग, योगाभ्यास संयम और साधना हैं।

पिता की भूमिका एवं महत्त्व :

वैदिक संस्कृति का मूल वेद है। वेद में माता और पिता के महत्त्व को अनेक मन्त्रों में अभिव्यक्त किया गया है। अथर्ववेद (३/३०/२) में कहा है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रों मात्रा भवतु सम्मनाः ।

जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥

पुत्र पिता के व्रत का अनुकरण करने वाला हो। मनुष्य के निर्माण के लिए द्वितीय स्थान पिता का आता है जो उसकी रक्षा करता है तथा ज्ञान व शिक्षा दिलाकर सुयोग्य बनाता है।

आर्य संस्कृति का यह भी सन्देश है कि प्रत्येक बच्चे को पुत्र बनने की योग्यता प्राप्त करनी चाहिए। पुत्र का अर्थ है-पुत+त्र अर्थात् पुत् कहते हैं नरक या दुःख को तथा त्र का अर्थ है-त्राण करने या रक्षा करने वाला। इस प्रकार माता पिता को दुःखों और कष्टों से बचाने वाला, कुल की श्रेष्ठ मर्यादाओं को निभाने वाला पुत्र कहलाता है। पुत्र अपने पिता के, शिष्य अपने गुरुओं के तथा श्रोता अपने उपदेशकों के अनुव्रत होकर कार्य करें। अर्थात् उनकी अच्छी शिक्षा के अनुसार चलने का व्रत धारण करें-यही हमारे जीवन में हमारे माता पिता के महत्त्व का रहस्य है।

जो व्यक्ति अपने माता-पिता के महत्त्व को नहीं समझता और अपने जीवन में उनकी भूमिका के प्रति कृतज्ञता व्यक्त नहीं करता, वैदिक संस्कृति के अनुसार वह कभी जीवन में या जीवन के बाद सुख प्राप्त नहींकर सकता। संस्कृत के किसी कवि ने कहा है-

यं माता-पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः कर्तुं शक्या जन्म शतैरपि॥

माता पिता अपने सन्तान के लिए जो कष्ट सहन करते हैं सन्तान द्वारा उसका बदला सौ वर्षों में भी नहीं चुकाया जा सकता।

आध्यात्मिक जीवन के आठ सोपान

-हरिकृष्ण आर्य

१. **सन्ध्या-उपासना :-** आध्यात्मिक जीवन से अभिप्रायः है कि अपने आत्मा व परमात्मा पर पूर्ण विश्वास रखते हुए अपना जीवन चलना । मैं जड़ शरीर नहीं हूँ, मैं चेतन आत्मा हूँ, जिसने अपने बचपन को भी देखा, युवावस्था को भी और वृद्धावस्था भी देख रहा है । यह जड़ शरीर तो एक दिन जला दिया जाएगा परन्तु मैं नहीं समाप्त हो ऊँगा, अपनी अगली यात्रा पर निकल जा ऊँगा । ऐसा विचार कर जीवन में आत्मा को मुख्य और शरीर व मन को गौण समझकर आचरण करना और परमपिता परमात्मा को दोनों का अधिष्ठाता व नियन्त्रक मानकर जीवन जीना आध्यात्मिक जीवन है । परमात्मा मेरा पिता व मैं उसका पुत्र हूँ-अमृत पुत्र । हर क्षेत्र में मेरा वह पिता मुझसे अधिक हितैषी है । अतः मैं हर समय उस परमपिता को याद रखूँ और प्रातः सायं तो विशेषरूप से सन्ध्या-वन्दन, उपासना, आराधना, उसका स्मरण भजन करूँ । सदा अपनी आत्मा की आवाज को सुनूँ और मानूँ, अपनी मनमानी न करूँ । इस प्रकारका आध्यात्मिक जीवन जीने से हमें आत्मिक आनन्द व आत्मिक उन्नति प्राप्त होगी ।

२. **सरलता व सादगी :-** सादगी सदाचार की जननी है और श्रृंगार व्यभिचार का दूत । जीवन में सदा सादगी और उत्तम विचारों को अपनाते हुए उच्च आदर्शों को प्राप्त किया जा सकता है, अन्यथा नहीं । सादा रहन-सहन से जीवन में सात्त्विकता, पवित्रता, धार्मिकता का उदय होता है । सादा खानपान से तन व मन दोनों स्वस्थ रहते हैं । सरलता जीवन में सदाचार व सद् व्यवहार को जन्म देती है । इसके विपरीत फैशन संसार की तड़क-भड़क, दिखावट, बनावट, झूठा अभिमान, अहंकार, असत्य व विलासिता को जीवन के अंग बना देता है । फैशन मनुष्य को व्यभिचार, दुराचार, भ्रष्टाचार व अत्याचार की ओर ले जाता है । झूठे ठाठ-वाट, 'खाओ पीयो मौज करो' वाली असम्भ्यता में पलने वाले लोग जीवन में कभी उच्चा दर्शों को प्राप्त नहीं कर सकते, वे तो मनुष्य के सामान्य स्तर से भी गिर जाते हैं । आजकल की पश्चिमी बयार के चलते तो स्त्रियाँ ही क्या पुरुष भी इस फैशन रूपी दानव के पन्जे में फंसते जा रहे हैं और अनैतिकता व चरित्र हीनता के गर्त्त में गिरते जा रहे हैं । अतः जीवन में आध्यात्मिकता, सुखशान्ति और आनन्द के लिए सादा रहन-सहन, सादा खानपान, सद् व्यवहार व सदाचार अति आवश्यक हैं ।

३. **सत्याचरण :-** मन, वचन व कर्म से सत्य का पालन करना आध्यात्मिक जीवन का एक अभिन्न अंग है । सब काम सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए तथा सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा तत्पर रहना चाहिए । सत्याचरण ही धर्म का मूल है जिस पर सन्सार का सारा व्यापार व व्यवहार टिका हुआ है । सत्य मार्ग पर चल कर ही हम उस सत्य स्वरूप, सर्वाधार, सर्वेश्वर को जान सकते है, किसी असत्य, प्रपन्च या धोखे या अन्धविश्वास के द्वारा नहीं । आरम्भ में तो असत्य, ठगी या धोखे से भी सफलता मिलती दिखाई देती है, परन्तु यह सफलता क्षणिक और अवास्तविक होती है । असत्य पर आधारित जीवन चलाने वाले लोग एक दिन जीवन की बाजी हार जाते हैं । सत्याचरण से मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध व पवित्र हो जाता है और शुद्ध व पवित्र अन्तःकरण ही परम पवित्र प्रभु का निवास स्थल है । अतः सत्य प्रकाश स्वरूप परमात्मा सत्याचरण करने वालों का ही सहायक होता है, अन्यों का नहीं । परमेश्वर पूर्णतः सत्य है ।

४. **सकारात्मक दृष्टिकोण :-** सकारात्मक दृष्टिकोण से तात्पर्य है जीवन में सदा शुभ कल्याणकारी संकल्प-विकल्प, शुभ विचार व शुभ भावी भावनाएँ बनाए रखना । आत्मा व परमात्मा में दृढ़ विश्वासी होना ही सकारात्मक जीवन दृष्टि है । परमात्मा ही सारे जगत् का उत्पत्ति कर्त्ता, धर्त्ता व संहर्त्ता है । वह अत्यन्त मंगलरूप व कल्याण कारी है । वह जो कुछ करता है, सब शुभ ही करता है । वह हम जीवात्माओं का परम हितकारक है । अतः हम नकारात्मक व अशुभ विचारों को महत्त्वहीन, निराधार व निरर्थक समझकर सदा छोड़ दें । नकारात्मक दृष्टि वाले लोग नास्तिक, विभिन्न आशंकाओं से ग्रस्त, भयभीत, आलसी व प्रमादी होकर दुःख भोगते हैं । ऐसे लोग विद्वानों व महात्माओं में भी दोष ढूंढते रहते हैं और उनके सद्गुणों से भी वन्चित रह जाते हैं । सकारात्मक दृष्टिकोण वाला मनुष्य सदा आशावान् बना रहता है । ईश्वर कृपा से सब शुभ होगा, अच्छा ही होगा, ऐसा विचार जीवन के हर क्षेत्र में बना रहता है और वह निर्भय निःशंक, उत्साही व पुरुषार्थी होकर हर कार्य में सफलता प्राप्त करता है । जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण आध्यात्मिक उन्नति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है ।

५. **समता व समानता :-** परमेश्वर के न्यायनियम अनुसार मनुष्य जीवन में सुख वा दुःख दोनों ही आते रहते हैं । कभी-कभी लगता है जीवन में दुःख अधिक है, सुख कम, परन्तु यहसत्य नहीं । आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए यह आवश्यक है कि हम सुख-दुःख, हर्ष-शोक, मान-अपमान, हानि लाभ में समता का भाव रखें और द्वन्द्वों के प्रभाव से ऊपर उठें । जब जीवन में सुख आवें तो हम नाचें नहीं और जब दुःख आवें तो रोएँ नहीं । यही समता का भाव है । दोनों अवस्थाओं में समान विचार

रखना समता योग कह लाता है । जितना हम अपने सुख को खींचकर लम्बा कर देंगे, हमारा दुःख भी खिंचकर उतना ही लम्बा हो जाएगा । अतः अतिवाद से सदा बचो । सुख आवे तो प्रभु का धन्यवाद करो और दुःख आवे तो प्रभु को याद करो, उससे सहन शक्ति व सामर्थ्य के लिए प्रार्थना करो । यही आध्यात्मिक जीवन का लक्षण है । जीवन में समता का अभ्यास एक बड़ा तप है, जिसका परिणाम सदा सुखद व अनुकरणीय है । ऐसा करने से मनुष्य बड़ी से बड़ी विपत्ति में भी विचलित नहीं होता ।

६. **सन्तोष सुख :-** सन्तोष जीवन का सब से बड़ा धन है जो मनुष्य को सुख व आनन्द की प्राप्ति कराता है । सन्तोषी परम सुखी होता है और असन्तोषी परम निर्धन । इस जीवन में मुझे जो कुछ भी मिला है, उस प्रभु की कृपा से मिला है । जितना भी प्रभु ने दिया है, मेरे लिए पर्याप्त है । प्रभु ने मुझे जीवन में बहुत कुछ दिया है और दिए जा रहा है । मैं इसके लिए उसका बार-बार धन्यवाद करता हूँ । ऐसा विचार जीवन में सदा बनाए रखें । तृष्णा का त्याग ही सन्तोष है । 'और और' की हाय हाय मनुष्य को मृत्युपर्यन्त दुःखी रखती है । एक इच्छा के पूरा होने पर दूसरी इच्छा तीव्र गति से सिर उठाकर सामने आ खड़ी होती है और मनुष्य इन इच्छाओं के जाल से कभी निकल नहीं पाता और सदा दुःख सागर में ही गते खाता-खाता इस सन्सार से विदा हो जाता है । जो मनुष्य अपनी इच्छाओं और अनावश्यकताओं पर अंकुश नहीं लगा पाता तथा संयम और समझदारी से काम नहीं लेता वह अन्ततः झूठ, भ्रष्टाचार, लूटपाट, चोरी, डकैती पर उतारू हो जाता है । तृष्णा ही अनेकानेक बुराईयों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों व दुःखों की माँ है । आध्यात्मिक जीवन जीने वाला मनुष्य इस तृष्णा को सन्तोष रूपी कुल्हाड़ी से काटकर नष्ट कर देता है । वह अपने लिए आगे सुख का मार्ग प्रशस्त कर लेता है ।

७. **स्वाध्याय :-** स्व का अर्थ है अपना और अध्याय का अर्थ है-अध्ययन । इस प्रकार स्वाध्याय का अर्थ हुआ-अपने आप को पढ़ना व जानना या पहचानना । कैसे जानें ? आत्मा व परमात्मा का बोध कराने वाली विद्या को पढ़ें । वेदसब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना और उसके अनुसार आचरण करना स्वाध्याय कहलाता है । सन्सार में सभी मनुष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की सिद्धि कर सुख व आनन्द को भोगना चाहते हैं । इनकी प्राप्ति का सत्य ज्ञान वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि सद् ग्रन्थों के अध्ययन से ही मिलता है । इनमें परमात्मा, जीव और प्रकृति का शुद्ध ज्ञान भरा पड़ा है । अकेलेपन और दुःख की घड़ियों में एक स्वाध्याय ही मनुष्य का सच्चा साथ निभाता है ।

परम पिता परमात्मा ओ३म् का जप, भजन, चिन्तन, मनन व गुरुमन्त्र गायत्री, महामृत्युंजय मन्त्र व ईश्वर स्तुति प्रार्थना उपासना आदि आदि मन्त्रों की अर्थ विचार सहित पुनरावृत्ति भी स्वाध्याय के अन्तर्गत ही आती है । स्वाध्याय शील मनुष्य का सम्बन्ध अपने उपास्य, आराध्य व इष्ट देव से शीघ्र जुड़ जाता है और उसके दोष, दुर्गुण व भ्रम दूर होकर शीघ्र अपने ध्येय पर पहुंच जाता है । निरन्तर व नियमित स्वाध्याय आध्यात्मिक जीवन की आधार शिला है जो मनुष्य को सत्य ज्ञान और ज्ञान सहित भक्ति के द्वारा ईश्वर प्राप्ति की ओर अग्रसर व उत्साहित करता है । वेद का आदेश व निर्देश है कि साधक जन स्वाध्याय में कभी आलस्य व प्रमाद न करें और सदा स्वाध्याय को नित्य कर्म की भान्ति निभाएँ ।

८. **सत्संगति :-** स्वाध्याय की भान्ति ही सत्संगति-सत्पुरुषों का संग भी आध्यात्मिक उन्नति के लिए परम आवश्यक है । वैदिक सत्संगों उत्सवों व शिविर आदि कों में दूर दूर से विद्वान् लोग आते हैं, उनके उपदेश व प्रवचन सुनने से ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान व अनुभव थोड़े समय में ही उपलब्ध हो जाता है । उनका जीवन सात्त्विकता, धार्मिकता व आध्यात्मिकता का एक उदाहरण होता है, जो साधक के लिए आदर्श का काम करता है । सत्संगति और परस्पर विचार विमर्श से कई आशंकाएँ, भ्रान्तियाँ और गलत धारणाएँ दूर हो जाती हैं । अतः वैदिक विचार वाले आर्य सज्जन विद्वान् व स्वाध्यायशील साधक यदि आप से थोड़ा दूर भी रहते हों, तो परस्पर नियमित सत्संगति दोनों के लिए अति लाभदायक है । ईश्वर भक्ति, स्तुति प्रार्थना आदि के भजन नियमित रूप से सुनना सुनाना भी सत्संगति ही है । इससे साधना का निरन्तर प्रवाह साधक के जीवन में बना रहता है ।

परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे हमें शक्ति सामर्थ्य व सद्‌बुद्धि दें जिससे कि हम अपने जीवन में ईश्वर उपासना, सरलता व सादगी, सत्याचरण, समता, सकारात्मक दृष्टिकोण, सन्तोष स्वाध्याय व सत्संगति को अपनाएँ और एक आदर्श आध्यात्मिक जीवन जीने में सफल हो सकें ।

पढ़े लिखे भी मूर्ख हो सकते हैं

-रोहतास शास्त्री

चार युवक निरन्तर १२ वर्ष तक विद्या पढ़ने के बाद सम्पूर्ण शास्त्रों के पारंगत विद्वान् हो गए, किन्तु व्यवहार बुद्धि से चारों खाली थे । चारों कहीं जा रहे थे । रास्ता दो ओर फटता था । 'किस मार्ग से जाना चाहिए,' इसका कोई भी निश्चय न करने पर वे वहीं बैठ गए । इसी समय वहां से एक शव यात्रा निकली । उसके साथ बहुत से महाजन (बड़े व्यक्ति) भी थे । एक ने पुस्तक के पन्ने पलटकर देखा तो लिखा था- 'महाजनों येन गतः स पन्थाः ।' अर्थात् जिस मार्ग से महाजन जाए, वही मार्ग है । इसका अर्थ तो यह है कि हमें महान् लोगों का अनुकरण करना चाहिए, पर उन्होंने समझा कि हमें इन लोगों के पीछे चलना चाहिए । वे चल पड़े और शमशान में पहुँच गए ।

अब करें क्या ? थोड़ी दूर पर उन्होंने एक गधे को देखा । उन्हें शास्त्र की यह बात याद आ गई- 'राजद्वारे शमशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ।' अर्थात् राजद्वार और शमशान में जो खड़ा हो (साथ निभाए), वह भाई होता है । चारों ने गधे को भाई बना लिया । कोई उसके गले से लिपट गया तो कोई उसके पैर धोने लगा । इतने में

-शेष पृ. १३ पर

युवा-मृत्यु पर एक चिन्तन

-भद्रसेन वेद-दर्शनाचार्य

अनेक बार अकस्मात् युवाओं की मौत की घटनाएं भी हमारे सामने आती रहती हैं। निःसन्देह ऐसी घटनाएं अधिकतम किसी न किसी प्रकार की दुर्घटना के कारण ही होती हैं। तब सारी बात सामने आने पर प्रायः यही शब्द सुनाई देते हैं कि मौत कोई न कोई बहाना बना ही लेती है, भगवान् की मर्जी ही ऐसी थी, विधि के विधान को कौन टाल सकता है ? देखो ! किस प्रकार परिस्थितियों को बदलकर, क्योंकि मृतक की उस दिन की दिनचर्या कुछ और थी, तब उसमें यह परिवर्तन आया और काल ने इसको अपना प्राप्त बना लिया।

उस समय निकट से निकटतम रिश्तेदार जहां विलाप करते हुए अपनी हार्दिक वेदना प्रकट करते हैं, वहां ऐसे अवसर पर आने वाला प्रत्येक अपना दुःख प्रकट करता है। तब प्रायः प्रत्येक यही कहता हुआ सुनाई देता है कि ऐसा नहीं होना चाहिए था। यह अच्छा नहीं हुआ, ऐसा बुरा क्यों हुआ ? हमारा ऐसा सोचना, इस दुर्घटना को इस रूप में पसन्द न करना, इस बात का प्रमाण है कि सभी का दिल यह मान रहा है, यह ठीक नहीं हुआ, क्योंकि दिल की गहराइयों से जो निकलता है, वह सत्य होता है। तभी तो कहा है-**'प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः'**-कालिदास-अभिज्ञानशाकुन्तलम्। ऐसा कोई एकाध ही नहीं चाहता, अपितु सभी की यही चाहना होती है।

इस दुर्घटना के इस रूप को पसन्द न करने से यह सिद्ध होता है कि यह सब प्रभु की इच्छा से नहीं हुआ। क्योंकि ईश्वर तो सबका परमपिता है और पिता सदा ही अपनों का भला ही चाहता है तथा करता है। जब संसारी पिता हर तरह से अपने बच्चों का भला ही करने का यत्न करता है। जिस कृपालु प्रभु ने हमारे भले के लिए एक से एक अद्भुत भौतिक, प्राकृतिक पदार्थ दिए हैं। वह दयालु प्रभु फिर किसी का बुरा कैसे कर सकता है ? जब हम सब इसको अच्छा नहीं समझते, तो वह सबका हित चाहने वाला कैसे ऐसा चाह सकता है ? ईश्वर कर्मफल दाता है, पर वह न्यायकारी कर्मफल दाता है। वह सर्वज्ञ होने से पूर्ण न्याय करता है अर्थात् दूध का दूध पानी का पानी करता है।

निःसन्देह यह घटना, यह बात एक सामान्य घटना, बात नहीं है, अपितु यह एक विशेष घटना, बात है। क्योंकि हम अपने चारों ओर प्रायः यही देखते हैं कि हर भौतिक चीज (जो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश जैसे पांच भूतों से बनी है, वह) परिवर्तनशील होने से अपने-अपने रूप के अनुरूप एक दिन पूर्ण, ओझल हो जाती है। हां, कई बार कुछ जरा-जीर्ण, वृद्ध, घिसने से पूर्व भी पूरी हो जाती हैं। वे किसी न किसी विशेष कारण, बात के कारण ही ऐसी स्थिति को प्राप्त होती हैं। अतः उनको विशेष बात, घटना कहते हैं, तभी तो सभी को वे अनोखी, विचित्र लगती हैं। वहां विशेष बातक्या है ? यह विशेष बात से विचारने वाली गुत्थी है, विशेष विचारणीय बात कही जा सकती है।

इस प्रकार की विशेष बात, घटना की गहराई, पूर्व पृष्ठ भूमि, कहानी में जब जाते हैं, जो उस दुर्घटना में अनेक बार जहां अपनी लापरवाही, असावधानी, अज्ञानता, गलती होती है या मशीन की कुछ गड़बड़ होती है। बहुत बार वहां इस तरहकी दुर्घटनाओं में कुछ की लापरवाही, असावधानी या कुछ की अपराध की भावना भी सामने आती है। जो कि योजना बनाकर जानबूझकर अपराध करते हैं। जैसे कि कनिष्क विमान की दुर्घटना, जिसमें २३ जून १९८५ को ३२९ की मृत्यु हुई थी तथा ११ सितम्बर २००१ को अमेरिका के वाशिंगटन, न्यूयार्क में किया गया आतंकवादी हमला, जिसमें ५ हजार के लगभग की मृत्यु हुई और तीन विशाल भवन अग्नि की भेंट हो गए। इस प्रकार की छोटी-बड़ी दुर्घटनाएं हमारे चारों ओर प्रतिदिन हो रही हैं। तब स्वाभाविक रूप से अपराधियों को खोजकर दण्ड देने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार के प्रयास को सभी पसन्द करते हैं। इससे भी यह सिद्ध होता है कि यह भगवान कीं मर्जी नहीं है और न ही विधि का विधान है। तभी तो हम ऐसी मौतों को पसन्द नहीं करते और अपराधियों को दिए जाने वाले दण्ड के प्रयास को पसन्द करते हैं।

परमपिता परमेश्वर सदा ही सब का हित ही चाहता और करता है, क्योंकि सर्वज्ञ होने से वही पूरी तरह से जानता है कि किसी का हित किस में है। फिर हमारे सर्वज्ञ पिता परमेश्वर की इच्छा से किसी की अकाल मृत्यु कैसे हो सकती है ?

इस प्रकार की युवाओं की मृत्यु की रस्म पगड़ी पर प्रायः धार्मिक प्रवक्ता परिवार को और विशेषतः पिता, पत्नी, पुत्र आदि को दुर्भाग्यशाली मानते हैं और उनको कुछ प्राचीन कथानक सुना-सुनाकर कोसते हैं। इस प्रकार उनमें आत्मग्लानि, आत्महीनता उभरकर उनके मन, धैर्य को कमजोर किया जाता है। जबकि इन बदली परिस्थितियों में परिवार के लिए धैर्य ही ऐकमात्र आधार होता है। सब्र ही सब से बड़ा सहारा होता है। अतः हम सबको ऐसे भाव सामने लाने चाहिए, जिसने उन सब वियुक्तों, दुःखियों को धैर्य मिले, सब्र हो। जिससे ये इस नई आपत्ति, बाधा, अड़चन पर धीरज के साथ पार पा सकें। कभी न कभी हर एक सामने

...पृ. ४ का शेष

किसी न किसी प्रकार की विपरीत परिस्थिति, विपत्ति, अड़चन, बाधा आ जाती है । ऐसी स्थिति में धीरता के धारण से ही उस विपरीत परिस्थितियों को सहा जा सकता है और उस-उस से निकला जा सकता है । घबरा जाने से, धैर्य छोड़ देने से आपत्ति और अधिक बढ़ती ही है । दुःख, कष्ट, क्लेश और भी अधिक हावी होते हैं । तभी तो दृष्टान्त सहित समझाते हुए कहा है-

त्याज्यं न धैर्य विधुरेऽपि काले,
धैर्यात्कदाचिद् गतिमाप्नुयात् ।
यथा समुदेऽपि पोतभङ्गे,
सांयन्त्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ।।

(पंचतत्त्व मित्रभेद ३१९)

जब हिम्मत करके इस दुःख को सहने का प्रयास कर रहे होते हैं, तब उनकी हिम्मत की दाद ही देनी चाहिए । यदि कोई उनको किसी प्रकार से दुर्भाग्यशाली कह-कहकर उनके ढाढस को गिराने की बात करता है, तो यह उचित नहीं, क्योंकि इसका उलटा प्रभाव होता है । जब मौत की घटना सामयिक रूप में स्पष्ट ही हो, कम से कम तबतो ऐसी चर्चा करना कि बाप के सामने बेटे की अर्थी उठी हैं, अतः यह घोर कलियुग है, दुर्भाग्य की बात है, पूर्व के किन्हीं कर्मों का फल है ? इस प्रकार की बातों से किसी का मन, धैर्य ही कमजोर होता है । वस्तुतः इस स्थिति में हर तरह से धैर्य को बढ़ाने की सबसे पहली जरूरत होती है । हां, जब हम यह कहते हैं कि सभी अपने-अपने कर्मों का फल ही प्राप्त करते हैं और कोई भी दूसरे के कर्मफल में दखल नहीं दे सकता, क्योंकि न्यायकारी की यह कर्मफल व्यवस्था सर्वथा पूर्ण है । तभी तो हा है-

मेरे दाता के दरबार में, सब लोगों को खाता ।
जैसा जो कोई कर्म करे, वैसा ही वह फल पाता ।
विश्वपति जगदीश तू...
दाता तेरे दरबार में, होता सदा न्याय है ।
चलती है न रिश्वत, सिफारिशें, चलता न कोई नाम है ।

...पृ.११ का शेष

एक ऊँट उधर से गुजरा । अब यह कौन है ? उन्हें पुस्तकों के अतिरिक्त संसार की किसी वस्तु का ज्ञान नहीं था । ऊँट को वेग से भागते हुए देख कर उनमें से एक को पुस्तक में लिखा यह वाक्य याद आ गया- 'धर्मस्य त्वरिता गतिः ।।'-अर्थात् धर्म की गति में बड़ा वेग होता है । उन्हें विश्वास हो गया कि वेग से जाने वाली यह वस्तु अवश्य 'धर्म' है । उसी समय उनमें से एक को याद आया- 'मित्रम् धर्मेण योजयेत् ।। मित्र को धर्म से जड़ दें अर्थात् धर्म के कार्यों में लगा देना चाहिए । उनकी समझ में मित्र, बान्धव था गधा और ऊँट था धर्म । बस खींचखांच कर उन्होंने ऊँट के गले में गधा बाँध दिया । वह गधा एक धोबी का था । उसे अपनी ओर आता देखकर चारो शास्त्र-पारंगत पंडित वहाँ से भाग खड़े हुए ।

थोड़ी दूर पर एक नदी थी । नदी में पलाश का एक पत्ता तैरता हुआ आ रहा था । उनमें से एक को याद आ गया- **'आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति ।'** अर्थात् जो पत्र आएगा, वही हमारा उद्धार करेगा । वह मूर्ख पत्ते पर लेट गया । पत्ता पानी में डूब गया तो वह भी डूबने लगा । केवल उसकी शिखा पानी से बाहर रह गई । इसी तरह बहते-बहते जब वह दूसरे मूर्ख पठित के पास पहुँचा तो उसे एक और शास्त्रोक्त वाक्य याद आ गया- 'सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्थं त्यजति पंडितः ।।' अर्थात् सम्पूर्ण का नाश होते देखकर आधे को बचा ले और आधेका त्याग कर दे । यह याद आते ही उसने बहते हुए पूरे आदमी का आधा भाग बचाने के लिए उसकी शिखा पकड़कर गरदन काट दी । उसके साथ में केवल सिर का हिस्सा आ गया । देह पानी में बहगई । चार के अब तीन रहगए । गाँव पहुँचने पर तीनों को अलग-अलग घरों में ठहराया गया । वहां उन्हेंभोजन दिया गया तो एक ने सेमियों को यहकहकर छोड़ दिया 'दीर्घसूत्री विनश्यति' उन्होंने समझा-लम्बे लम्बे धागों वाला । दूसरे को रोटियां दी गई तो उसे याद आ गया- 'अतिविस्तार विस्तीर्ण तद्भवेन्न चिरायुषम्' अर्थात् बहुत फैली हुई वस्तु आयु को घटाती है । परिणाम यह हुआ कि तीनों की जग हँसाई हुई और तीनों भूखे भी रहे । इसीलिए कहा गया है कि शास्त्र पढ़कर भी (कुछ लोग) मूर्ख हुआ करते हैं । (शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः ।।)

Lecture)

मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि जो भी व्यक्ति यह जानना चाहता है कि मानव जाति आज जो है वह कैसे हुई, आज जो भाषा है वह कैसे आई, आज जो धर्म है वह कैसे आया, कैसे शिष्टाचार, रिवाज, कानून और सरकारों के रूप जैसे आज हैं वे कैसे हुए, हम आज जो भी हैं वह कैसे हुए, इनके लिए संस्कृत सीखें और वैदिक संस्कृत का अध्ययन करें । लेकिन मैं इस पर जरूर विश्वास करता हूँ कि यह नहीं जानना कि संस्कृत के अध्ययन ने और विशेषकर वेद के अध्ययन ने मानव मस्तिष्क-वह मस्तिष्क जिस पर हम स्वयं भोजन कर रहे हैं और रहरहे हैं-के इतिहास के सबसे अन्धकारमय अंशों को देदीप्यमान करने के लिए पहले से ही क्या किया है, तो यह हमारा दुर्भाग्य है या कहा जाए तो वह हमारी हानि है । यह ऐसी ही हानि है कि जैसे मैंने, भूमि की बनावट, सूर्य, चन्द्रमा और तारों को, विचारों को या इच्छा को या इन्हें नियंत्रित करने वाले नियमों के बारे में बिना कुछ जाने, जीवन बिता दिया है ।

If you thinkg that I exaggerate, let me read you in conclusion what one of the greatest philosophical critics-and certainly not a man given to admiring the thoughts of others says of the Vedanta, and more particularly of the Upanishads. Schopenhauer writes : 'In the whole world there is no study so beneficial and so elevating as that of the Upanishads. It has been the solace of my life-it will be the solace of my death.' (Seventh Lecture)

यदि आप सोचते हैं कि मैं अतिशयोक्ति कर रहा हूँ तो मुझे निष्कर्ष में यह पढ़ने दें जो एक महान दार्शनिक समालोचक वेदान्त के बारे में और विशेष रूप से उपनिषदों के बारे में कहता है । यह व्यक्ति निश्चित रूप से ऐसा व्यक्ति नहीं है जो दूसरों के विचारों की प्रशंसा करता रहता है । शॉपेनहार लिखता है :

'पूरे संसार में कोई भी अध्ययन इतना लाभप्रद और ऊँचाई प्रदान करने वाला नहीं है, जैसा कि उपनिषदों का अध्ययन है । यह मेरे जीवन का सन्तोष है और यह मेरी मृत्यु का भी सन्तोष होगा ।'

इस मंत्र में माता, पिता और गुरु का भाव गुनें

-ओम प्रकाश आर्य

परमात्मा हमारी माता है, हमारा पिता है और गुरु है । माता के समान प्रेम करने वाला, पिता के समान कल्याण करने वाला और गुरु के समान शिक्षा देता है । इसी कारण असंख्य नामों में उसका नाम माता, पिता और गुरु भी है । महर्षि दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में लिखते हैं-

"जैसे पूर्ण कृपायुक्त जननी अपनी सन्तानों का सुख और उन्नति चाहती है वैसे ही परमेश्वर भी सब जीवों की बढ़ती चाहता है, इससे परमेश्वर का नाम "माता" है ।"

"जो सबका रक्षक जैसा पिता अपनी सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे उसका नाम "पिता" है ।"

"जो सत्य धर्म प्रतिपादक, सकल विद्यायुक्त वेदों का उपदेश करता, सृष्टि की आदि में अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा और ब्रह्मादि गुरुओं का भी गुरु और जिसका नाश कभी नही होता, इसलिए उस परमेश्वर का नाम "गुरु" है ।"

हम प्रतिदिन संध्या के मंत्रों में माता, पिता, गुरु से संयुक्त पहला मंत्र बोतले हैं-

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये । शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ -यजु. ३६/१२

शब्दार्थ-"**(ओम्)** ईश्वर का मुख्य नाम **(शम्)** कल्याणकारी (नः) हम पर **(देवीः)** सर्व प्रकाशक **(अभिष्टये)** इच्छित फल के लिए **(आपः)** सर्वव्यापक **(भवन्तु)** हों **(पीतये)** आनन्द प्राप्ति के लिए **(शंयोः)** सुख की **(अभिस्रवन्तु)** वर्षा करे (नः) हम पर ।"

भावार्थ-"सर्व प्रकाशक और सर्व व्यापक ईश्वर इच्छित फल और आनन्द प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो और हम पर सुख की वृष्टि करे ।"-**'कर्त्तव्य दर्पण'** म. नारायण स्वामी कृत !

इस मंत्र में हम माता, पिता और गुरु इन तीनों का भाव गुन सकते है । यह संध्या का पहला मंत्र है । मंत्र में इच्छत फल और आनन्द प्राप्ति की कामना की गई है । इनके मिलने पर सुख की वर्षा हो ही जाएगी । इस धरती पर माता के समान प्रेम करने वाला कोई नहीं है । पिता के समान कल्याण चाहने वाला कोई नहीं है और गुरु के समान जीवन का निर्माण करने वाला कई नहीं है । मंत्र में सबसे पहले परमात्मा को माता के रूप में पुकारा गया है । उसके लिए "देवी" शब्द आया है । यह शब्द स्त्रीलिंग में प्रयुक्त है । दूसरा शब्द "आपः" है जो पुल्लिंग में प्रयुक्त है । यह शब्द परमात्मा का पिता के रूप में अभिव्यक्ति करण कर रहा है । इस मंत्र के माध्यम से शिक्षा कौन दे रहा है ? परमपिता परमात्मा ! वह गुरु के रूप में मंत्र के माध्यम से हमारे अज्ञान को दूर कर रहा हैं । दिव्य प्रकाश भर रहा है । माता के रूप में इच्छित फल, पिता के रूप में आनन्द और गुरु के रूप में सुखों की वर्षा कर रहा है । जब हम संध्या करने बैठें तब इन तीनों का भाव मन में अवश्य धारण करें । इससे अर्थ ग्रहण में बहुत सहायता मिलेगी और सन्ध्या में मन भी लगने लगेगा ।

मंत्र में 'शम्' शब्द आया है । महर्षि दयानन्द सरस्वती ने 'शम्' शब्द के चार अर्थ बताए हैं-सुखकारक, सुखस्वरूप, सुखप्रचारक और विद्याप्रद । देखें स.प्र.प्र. समु ॥ परमात्मा माता के समान सुख प्रदान करता है । पिता के समान, सुख भरती है और गुरु के समान विद्या प्रदान करता है । जब हमें चोट लगती है तब प्रथम मुख से माँ शब्द निकलता है । लाख मुसीबत सहकर भी पिता अपनी सन्तान को उन्नति की ओर ले जाने, का प्रयत्न करता है । गुरु अपने ज्ञान को शिष्य में उड़ेल देना चाहता है । एक माँ डॉक्टर से बोली, "भले ही मेरे प्राण न बचें लेकिन मेरे बच्चे को बचा लेना" एक पिता ने अपने पुत्र की शिक्षा में घर की सारी सम्पत्ति ही बेच डाली । एक गुरु अपने शिष्य को आगे बढ़ाने के लिए अतिरिक्त समय देकर पढ़ाया करते थे । हम इन तीनों का समन्वय रूप परमात्मा में प्राप्त कर सकते है । परमात्मा के माता जैसे ही पुकारो । परमात्मा को पिता के जैसे तो बुलाओ । परमात्मा को गुरु के जैसे ही तो आदर दो । फिर परमात्मा अपने पुत्र-पुत्री की बात अवश्य सुनेगा । हम परमात्मा में माता, पिता, गुरु के गुण गुनें । यही बात इस श्लोक में चिन्तन योग्य है-

त्वमेव माता च पिता त्वेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मग देवदेव ॥

परमात्मा ने इस धरती का सारा वैभव, ऐश्वर्य माता के रूप में अपने पुत्र को प्रदान किया है । सूर्य, चन्द्र, वायु, आकाश, जल, नक्षत्र पिता रूप में कल्याण की धारा बहा रहा है । सारा वेद ज्ञान, गुरु के रूप में प्रदान कर प्रतिदिन शिक्षा प्रदान कर रहा है । धरती पर दृष्टि डालो और माँ के रूप में परमात्मा का अनुभव करो । ऊपर आकाश में दृष्टि डालो और पिता के रूप में परमात्मा का उनुभव करो । वेद को पढ़ो और गुरु के रूप से परमात्मा का अनुभव करो । ये भाव बड़े ऊँचे हैं । चिन्तन की गहराई में ये भाव प्राप्त होंगे ।

चिन्तन की गहराई में कैसे उतरें ?

यह एक स्वाभाविक प्रश्न है । एक छोटा बालक है, बह खेल रहा है । पास में माँ बैठी है और शिशु को खेलते हुए देख रही है । बालक हँसता है, खिलखिलाता है, कभी गिर भी पड़ता है । माँ उसे संभाल लेती है । इतने में पिताजी भी आ जाते हैं, वे बच्चे को खिलौने देते हैं । कुछ पल लाड़-प्यार करके चले जाते हैं । कुछ समय वाद बच्चा गुरु के पास होता है । वहाँ गुरु उसे पढ़ाते हैं । पाठ याद करते हैं । नया पाठ पढ़ाते हैं । कभी-कभी परीक्षा होती हैं । डाँट भी देते हैं । ये सारी क्रियाएँ हम परमात्मा में घटा सकते हैं । परमात्मा माता के रूप में हमें जीवन की क्रीड़ा करते हुए देख रहा है । पिता के रूप में ऐश्वर्य, सम्पदा, भोग सामग्री रूपी खिलौने प्रदान कर रहा है । गुरु के रूप में वेद पढ़ने के लिए कह रहा है । कभी-कभी प्रताड़ना भी देता है । ये भाव चिन्तन योग्य हैं । चिन्तन की और गहराई में उतरें । माता के समान असीम प्यार करने वाला इस धरती पर कोई नहीं है । अपने निर्मल अन्तःकरण में परमात्मा को माता के रूप में कारुणिक

-शेष पृ. १३ पर

मानव जीवन मिलना ईश्वर की हम पर सबसे बड़ी कृपा

-मनमोहन कुमार आर्य

हमें मनुष्य का जीवन मिला हुआ है। इस जीवन को प्राप्त करने में हमारे माता-पिता का योगदान निर्विवाद है परन्तु इसके साथ ही हमारी आत्मा और शरीर का सम्बन्ध कराने वाला सच्चिदानन्दस्वरूप, सर्वव्यापक एवं सर्वशक्तिमान परमात्मा है। यदि परमात्मा न होता तो न तो यह सृष्टि अस्तित्व में आती और न ही इस सृष्टि में प्राणी जगत् का अस्तित्व होता। परमात्मा इस सृष्टि का निमित्त कारण है और उसने ही अपनी सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता से अनादि, नित्य, अमर तथा नाशरहित जीवात्माओं को उनके पूर्व जन्मों के शुभ व अशुभ कर्मों का सुख व दुःखरूपी फल देने के लिए ही इस संसार की रचना की है और वही इसका पालन व संचालन कर रहे है। सृष्टि का उपादान कारण जड़ प्रकृति है जो प्रलयावस्था में अत्यन्त सूक्ष्म व सत्व, रज एवं तम गुणों वाली होती है। हम सभी मनुष्यों को ईश्वर को जानना है और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करना है जिससे हम अपने जीवन में दुःखों से बचे रहें और मृत्यु के बाद हमें मोक्ष प्रांप्त हो सके। यदि हम मोक्ष की अर्हता पूरी न कर सकें तब भी हमें श्रेष्ठ मनुष्यों की देवयोनि में जन्म मिले जहाँ रहते हुए हम पुनः मोक्ष की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें और उसे प्राप्त कर लें।

जन्म व मृत्यु की पहेली को समझने के लिए सभी मनुष्यों को ऋषि दयानन्द कृत 'सत्यार्थ प्रकाश' आदि समस्त ग्रन्थों को पढ़ना चाहिए। सत्यार्थ प्रकाश में अनेक विषयों परजो विस्तृत ज्ञान है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है और यदि कुछ है भी तो उसके लिए जिज्ञासु बन्धुओं को अनेक संस्कृत के वैदिक ग्रन्थों को अनेक संस्कृत के वैदिक ग्रन्थों को पढ़ना होगा। सत्यार्थ प्रकाश का महत्व यह है कि प्रायः सभी इष्ट विषयों का ज्ञान इस ग्रन्थ को पढ़कर ४-५ दिनों में ही हमें प्राप्त हो जाता है जिसमें **सृष्टि व ईश्वर-जीवात्मा** विषयक प्रायः सभी रहस्य सम्मिलित हैं। इसी कारण वेद मनीषी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी ने कहा था कि उन्होंने अपने जीवन में लगभग १८ बार ऋषि दयानन्द रचित 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ पढ़ा। उन्होंने यह भी कहा है कि यदि सत्यार्थ प्रकाश पढ़ने के लिए मुझे अपनी समस्त भौतिक सम्मपत्ति बेचनी पड़ती तब भी मैं सहर्ष इस पुस्तक को प्राप्त करता। सत्यार्थ प्रकाश का महत्व वर्णनातीत है। इसकी महत्ता एवं उपयोगिता को शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता।

संसार में तीन अनादि, अमर तथा नित्य सत्ताएँ ईश्वर, जीव और प्रकृति हैं। हम जीव हैं और हमारी ही तरह अनन्त जीवात्माएँ उस ब्रह्माण्ड में हैं। हम जीवात्मा हैं और हमारा शरीर पंचभौतिक पदार्थों के संयोग से बना है। यह संयोग ईश्वर के बनाए नियमों व व्यवस्था के द्वारा होता है जिसकी उत्पत्ति होती है उसका विनाश भी होता है और जिसकी उत्पत्ति नहीं हुई उसका विनाश कभी नहीं होता। इसी कारण हमारा शरीर नाशवान् अर्थात् मरण धर्मा है जब कि हमारी आत्मा अनादि, नित्य, अविनाशी और अमर है। हमारे इस शरीर के जन्म से पूर्व भी आत्मा का अस्तित्व था। हमारे इस शरीर के मृत्यु को प्राप्त होने पर भी हमारी आत्मा का अस्तित्व बना रहता है। ईश्वर अजन्मा है और इसके विपरीत जीवात्मा जन्म-मरण धर्मा है। इस जन्म से पूर्व भी हम अर्थात् हमारी जीवात्मा अपने पूर्व जन्म में उस जन्म के भी पहले के जन्मों के अभुक्त कर्मों के अनुसार जन्म देता है और कर्मों के अनुसार ही हमारी जाति (मनुष्य, पशु वा पक्षी आदि), आयु और भोग (सुख व दुःख) निश्चित होते हैं। यदि परमात्मा व प्रकृति में से, दोनों अथवा कोई एक या दोनों ही न होते तो हमारा जन्म व मरण नहीं हो सकता था और न ही हम किसी प्रकार के सुख व दुःखों का भोग कर सकते थे। हममें से कोई प्राणी दुःख नहीं चाहता, सभी प्राणी सुख, शान्ति व सुरक्षा चाहते हैं। सुखों का आधार शुभ व श्रेष्ठ कर्म हैं, अतः हमें अशुभ व पाप कर्मों को करना छोड़ना होगा। यदि हम पाप कर्मों को करना पूर्णतः छोड़ देंगे तो हमें दुःख प्राप्त नहीं होंगे और हम सुखपूर्वक इस जवन को व्यतीत कर अगले जन्म में भी सुखी व श्रेष्ठ मानव जीवन प्राप्त कर देवकोटि की मनुष्य योनि में जन्म लेकर सुखी जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

परमात्मा ने हमारे मार्गदर्शन व कर्त्तव्यों की प्रेरणा करने के लिए ही सृष्टि के आरम्भ में वेदों का ज्ञान दिया था। हमारे पूर्वज ऋषियों व विद्वानों ने वेद व इसके सत्य अर्थों की रक्षा की और इस कल्प में हमारी आत्मा लगभग १.९६ अरब वर्षों की यात्रा करते हुए वर्तमान जीवन तक पहुँचे हैं। इस रहस्य का ज्ञान कराने में महर्षि दयानन्द जी का बहुत बड़ा योगदान है। हम सब उनके ऋणी है। उन्हीं के कारण हम अपने इस जीवन में वेद, सत्यासत्य कर्मो के स्वरूप सहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष तथा इसकी प्राप्ति के उपाय ईश्वरोपासना, अग्निहोत्र व सदाचरण आदि को जान सके हैं। हमें सुख व प्रसन्नता आदि जो भी अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं वह सब ईश्वर हमें हमारे ज्ञान एवं कर्मों के अनुरूप प्रदान करते हैं। हमें सदैव स्वयंको ईश्वर का ऋणी व कृतज्ञ अनुभव करना है और वेदाध्ययन सहित ऋषि दयानन्द के सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों एवं अन्य विपुल वैदिक साहित्य का अध्ययन करते रहकर सन्मार्ग का अनुगमन करना है।

यदि हम अपने कर्मों को देखें तो हम पाते हैं कि अपने एक-एक कर्म का ज्ञान रखना कितना कठिन है। हम स्वयं ही अपने अतीत के अनेक कर्मों को भूल जाते हैं। ईश्वर हमारे इस जन्म व पूर्व जन्मों के किसी कर्म को नहीं भूलता। ईश्वर का यह गुण हमें उसके प्रति समर्पित होकर उपासना करने के लिए प्रेरित करता है। हमने कुछ दिन पहले फेसबुक पर एक मन्त्र व उसके मन्त्रार्थ को पढ़ा जिसमें कहा गया है कि हम दिन में कितनी बार पलक झपकते और

कितनी बार आँखे खोलते हैं, इसका पूरा-पूरा हिसाब परमात्मा को पता होता है। हमारे छोटे बड़े सभी कर्मों, चाहे वह दिन के प्रकाश में किए गए हों या रात्रि के अन्धेरे में अथवा सबसे छुपकर किए गए हों, परमात्मा उन सभी कर्मों को यथावत् जानता है और समयानुसार उनका फल कर्म करने वाले कर्त्ता को देता है। ईश्वर का यह गुण हमारे भीतर रोमांच उत्पन्न करता है। इसी कारण हमारे सभी विद्वान्, योगी व ऋषि न तो स्वयं कभी कोई अशुभ व पाप कर्म करते ते और न ही किसी अन्य को करने की प्रेरणा करते थे। हमें अपने जीवन को सार्थक बनाने व इसके लिए मार्गदर्शन प्राप्त करने के लिए ऋषि दयानन्द के अनेक विद्वानों द्वारा लिखे गए जीवन-चरितों सहित स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती, पं. लेखराम आर्य मुसाफिर, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज, स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती, स्वामी विद्यानन्द सरस्वती आदि महापुरुषों की जीवनियों व आत्म कथाओं को पढ़ना चाहिए। इससे हमें सत् कर्मों को करने की प्रेरणा मिलने के साथ असत्य के त्याग करने का बल भी प्राप्त होगा।

हम ईश्वर की कृपा को इस रूप में भी अनुभव करते हैं कि जब सन् १८२५ के दिनों में सारा देश अज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान से भ्रमित व अन्धविश्वासों व कुपरम्पराओं से ग्रस्त था, तब उस परमात्मा ने कृपा करके तत्कालीन व भावी सन्ततियों के लिए वेदज्ञान से परिपूर्ण ऋषि दयानन्द को इस देश में भेजा था जिन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर वेदों का प्रचार कर अज्ञान व अन्धविश्वासों कोदूर किया था। ऋषि दयानन्द ने जड़ मूर्ति पूजा की निरर्थकता से हमारा परिचय कराया था और फलित ज्योतिष की निर्मूलता व निरर्थकता से भी हमें सावधान रहने के लिए कहा था। अवतारवाद को उन्होंने अवैदिक व असत्य कल्पना करार दिया था और मृतक श्राद्ध को उन्होंने तर्क व युक्ति से असिद्ध घोषित किया था। उन्होंने स्त्री व शूद्रों सहित मनुष्य मात्र को वेदाध्ययन का अधिकार दिया और आर्य समाज गठित करके आर्य समाज के १० स्वर्णिम नियम हमें दिए थे। ऋषि दयानन्द ने हमें सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि आदि एक दर्जन से अधिक ग्रन्थ दिए जिन्हें पढ़कर हम अपने जीवन को ऊँचा उठा सकते सहित धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कर सकते है। उनकी कृपा से ही आज हम व लाखों लोग असत्य मत व मार्ग को त्याग कर सत्य व कल्याण-पथ को ग्रहण कर सके हैं।

इस जीवन में हमें वेद सहित ऋषि दयानन्द और प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थ ६ दर्शन, ११ उपनिषद्, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत सहित वैदिक विद्वानों के शताधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के अध्ययन का सुअवसर व सौभाग्य प्राप्त हुआ है। हम अनुभव करते हैं कि यदि ऋषि दयानन्द जी न आए होते तो हम निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि हम वैदिक सनातन धर्म में बने रहते भी या नहीं ? देश में धर्मान्तरण की जो आँधी विधर्मियों द्वारा चलाई गई थी उसे वेद प्रमाण, तर्क एवं युक्तियों से ऋषि दयानन्द और उनके बाद उनके अनुयायियों ने ही रोका था। हमें यह सब कार्य ईश्वर के द्वारा प्रेरित प्रतीत होते हैं। यदि ईश्वर हमारे महापुरुषों को प्रेरणा व शक्ति न देते तो आज देश और विश्व का स्वरूप वह न होता जो आज है। इस कार्य के लिए ईश्वर एवं ऋषि दयानन्द का कोटिशः बन्दन करते है। हमें वेद, उपनिषद्, दर्शन एवं सत्यार्थ प्रकाश आदि ऋषि ग्रन्थों का प्रचारकर वेदवाक्य **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** अर्थात् विश्व को श्रेष्ठ बनाने के विचार वा आज्ञा को सार्थ करना है।

परमात्मा ने हमें मनुष्य जन्म देने सहित भारत भूमि और वह भी एक वैदिक धर्मी वा सनातन धर्मी परिवार में जन्म देकर हम पर जो उपकार किया है, हम उसका भी सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। भारत में जन्म लेकर हम ऋषि दयानन्द और आर्य समाज से जुड़े है, यह भी ईश्वर की हम पर महती दया एवं कृपा है। हम सब आर्य भाई-बहिन इसके लिए ईश्वर के अतीव आभारी हैं। हम वैदिक साहित्य और वेद एवं ऋषियों की प्रेरणा के अनुरूप आचरणों से सदैव जुड़े रहें और ईश्वर की वेदाज्ञा का लोगों में प्रचार करते रहें, इसके लिए ईश्वर हमें सामर्थ्य एवं शक्ति प्रदान करें। ओ३म् शम्।

पृ. ११ का शेष

हृदय से पुकारें। उसके उपकारों का चिन्तन-मनन करें। ऐसी अनुभूति हो कि हम उसकी गोदी में बैठे हुए हैं। ऐसा पावन भाव ब्रह्ममुहूर्त में अनुभव कर सकते हैं। विना मन की निर्मलता के ऐसा भाव आएगा ही नहीं। अतएव यम, नियमों का पालन करते हुए सब कुछ परमात्मा को अर्पित करते हुए उसे माता के रूप में अनुभव करें। इसी प्रकार पिता और गुरु के भाव को भी अनुभव कर सकते हैं। यह तभी सम्भव हो सकता है जब हमें परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान होगा। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्य समाज के दूसरे नियम में उसके स्वरूप पर प्रकाश डाला है। सत्यार्थ प्रकाश का प्रथम समुल्लास इसके लिए सर्वोत्तम है। ईश्वर के गुणों का चिन्तन उसके नामों के अर्थों का मननपूर्वक विचार करके अपने हृदय को उससे आप्लावित कर सकते हैं। 'ईश्वर-प्रणिधान' अर्थात् सब कुछ परमात्मा को समर्पित कर देना। ईश्वर प्रणिधान एक ऐसा सूत्र हैजो इन तीनोंके भावों की अनुभूति करने में सक्षम है। इसे स्वयं अनुभव कर सकते हैं।

परमात्मा का कोई रूप, रंग, आकार तो है नहीं, केवल अन्तःकरण ही एक ऐसा साधन है जहाँ हम उसकी भव्यता, विद्यमानता का अनुभव कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त बाह्य जगत् में हम उसे देखना चाहें तो यह कदापि सम्भव नहीं है। योगमार्ग पर चलते हुए आत्मसमर्पण पूर्वक जीवन व्यतीत करते रहिए। आध्यात्मिक जगत् में आत्मसमर्पण एक सशक्त माध्यम है। इस भाव से हम अपने को तनाव, चिन्ता, घबराहट, व्यथा को भगा सकते हैं। सुख-दुःख, हानि-लाभ, जय-पराजय सब परमात्मा को समर्पित कर दीजिए। आप देखेंगे कि जीवन में एक बहुत बड़ा सम्बल का अनुभव होगा, जहाँ माता, पिता, गुरु होंगे वहाँ चिन्ता किस बात की होगी। परमात्मा आत्मा में बोलता रहता है पर उसकी आवाज़ बहुत धीमी होती है केवल प्रेरणा से उसे पहचान सकते हैं। अपनी माँ से आज्ञा लीजिए, पिता से आज्ञा लीजिए, गुरु से आज्ञा लीजिए, ये तीनों भाव परमात्मा में मौजूद ही हैं। चौबीस घंटे वह आपके साथ रहता है। इस प्रकार उक्त मंत्र में तीनों के भाव को ग्रहण करके जीवन को आनन्दमय बना सकते हैं।

रहीहै । उन्होंने कहा प्राचीन काल में वैदिक संस्कृति ही समूचे विश्व के देशों की संस्कृति भी थी । उन्होंने वैदिक संस्कृति को यूनिवर्सल संस्कृति की संज्ञा दी । स्वामी आर्य वेश जी ने कहा कि आज देश व समाज में व्यवस्था-परिवर्तन की आवश्यकता है जिससे आज की प्रमुख समस्याओं का निवारण सम्भव हो सके । स्वामी जी ने कहा कि यदि ऋषि दयानन्द जी की बात मान ली गई होती तो आज देश व समाज में जो समस्याएं हैं वह न होती । स्वामी जी ने लिव-इन-रिलेशन एवं समलैंगिकता की चर्चा भी की और इन्हें अनुचित व अनावश्यक सहित धर्म व संस्कृति के विरुद्ध बताया । स्वामी जी ने आगे कहा कि हमारे देश की माताओं को अपने बच्चों को वैदिक संस्कार देने चाहिएं । उन्होंने देश में यम, नियम और धर्म के राजर्षि मनु के दस लक्षणों का प्रचार किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया और कहा कि इन्हें पाठ्यक्रम में भी सम्मिलित किया जाना चाहिए ।

आर्य समाज के ओजस्वी विद्वान एवं बयोवृद्ध वक्ता आचार्य नरेश जी ने अपने सम्बोधन से कहा कि इस वैदिक संस्कृति संगोष्ठि का उद्देश्य युवा पीढ़ी को जगाना व देश को बचाना है । उन्होंने कहा कि धर्म एवं संस्कृति के प्रेमी सद्-गृहस्थियों से ही निकलेंगे । आचार्य जी ने आगे कहा कि जब तक हम श्रेष्ठ बातें अपने जीवन में धारण नहीं करेंगे तब तक न युवा जगेगा न देश बचेगा । वैदिक संस्कृति की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य एवं धर्म है । धर्म एवं संस्कृति की रक्षा और उस पर चले बिना हम बच नहीं सकते । आचार्य जी ने कहा कि भारत वर्ष आर्य धर्मी देश है । भारत का धर्म सत्य सनातन वैदिक धर्म है । माता-पिता बच्चों को चाहिए कि वह धर्म पाठको ध्यान पूर्वक सुनें । आचार्य जी ने बताया कि वह बडोदरा के निकट मोदी जी द्वारा बनवाई गई संसार की सब से ऊंची मूर्ति 'स्टैचू-ऑफ-यूनिटी' देखने गए थे । इस स्थान पर मूर्ति के के नीचे बनी गैलरी में उन्होंने लिखा पाया कि सभी क्रान्तिकारियों के प्रेरणा स्रोत ऋषि दयानन्द थे ।

जगत् की प्रसिद्ध विदुषी आचार्या डॉ. कल्पना आर्या जी अपने सम्बोधन में कहा कि स्त्री को नाभि वा केन्द्र से हटाने के लिए सारा विश्व खड़ा है । आचार्या जी ने लिविंग-इन-रिलेशन की चर्चा की और कहा कि उन बहिनों को, जो आज़ादी की बातें करती हैं, सम्भालना बहुत आवश्यक है । वर्तमान समय में हमारी लड़कियों को विधर्मियों द्वारा बुरे इरादों से प्रभावित कर उन्हें विधर्मी बनाने व मारने आदि की पृष्ठ भूमि पर प्रकाश डाला । उन्होंने कहा कि हमें अपने बच्चों को समझाने के लिए अपने गृहस्थ को सुधारना होगा जिससे हमारी भोली व ना समझ बेटियों को कोई विधर्मी फंसा न सके । नारी राष्ट्र की ध्वजा है । ध्वज सम्मान का प्रतीक होता है । उसका कोई अपमान करे तो हम उसे सहन नहीं कर सकते । इसी प्रकार यदि कोई हमारी बेटियों का अपमान करता है तो उसे सहन नहीं किया जा सकता । आचार्या जी ने आगे कहा कि नारी भोग की वस्तु नहीं है । प्राचीन समय में नारियों के सम्मान की रक्षा के लिए ही बड़े-बड़े युद्ध यथा राम-रावण व महाभारत आदि युद्ध लड़े गए हैं । युवा कन्याओं की वर्तमान मानसिक स्थिति व मनोदशा का आचार्या जी ने सजीव चित्रण किया । आज नारी को भोग की वस्तु बना दिया गया है । यदि आज हमारा पौरुष नहीं जागा तो हमारे समस्त महापुरुष और पूर्वज हमें धिक्कारेंगे ।

स्वामी योगेश्वरानन्द सरस्वती भी ओजस्वी विचार प्रस्तुत किए । उन्होंने कहा कि हमारा भारत विश्वगुरु था । समय बीतने के साथ हमारी आपस की फूट के कारण वृहत्तर वा अखण्ड भारत खण्डित हुआ । वेदों के ज्ञान के दूर जाने के कारण आर्य हिन्दू जाति कमजोर हो रही है । स्वामी जी ने कहा कि टीवी के अधिकांश कार्यक्रम हमारी संस्कृति अनुरूप नहीं है । इन कार्यक्रमों से हम कुसंस्कारों का शिकार हो रहे हैं । उन्होंने कहा कि मोबाइल का अधिक प्रयोग करने के कारण हमारी युवा पीढ़ी बर्बाद हो रही है । स्वामी जी ने अपने वक्तव्य को विराम देते हुए कहा कि संस्कार केवल वैदिक गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली में ही मिलते हैं ।

सनातनी विद्वान महन्त कृष्णागिरी जी अपने सम्बोधन में कहा कि उनका निर्माणी अखाड़ा देश में गुरुकुलों सहित इंजीनियरिंग एवं अन्य विषयों के कॉलेज चला रहा है । उन्होंने कहा कि जब तक गाय, गंगा तथा हमारी संस्कृति नहीं बचेगी हम सुरक्षित नहीं रह सकते । महन्त जी ने कहा कि हम अपने बच्चों को अपने धर्म एवं संस्कृति की सभी महत्वपूर्ण व उपयोगी बातों को नहीं सीखा पाते । उन्होंने कहा कि सन्तानों को अपने-अपने माता-पिताओं का सम्मान करना चाहिए । उन्होंने सभागार में उपस्थित बड़ी संख्या में श्रोताओं को प्रेरणा देते हुए कहा कि अपने बच्चों को धर्म व संस्कृति में निहित संस्कार दें और उन्हें अपनी सभी परम्पराओं का परिचय दें । महन्त जी ने स्वामी दयानन्द जी का सम्मान से युक्त शब्दों में उल्लेख किया और उनके कार्यों की सराहना की । महन्त कृष्णागिरी जी ने कहा कि जब तक हम जगेंगे नहीं हमारी माताएं और बच्चे सुरक्षित नहीं रहेंगे । महन्त जी ने माताओं को कहा कि वह अपनी पुत्रियों को भारतीय संस्कृति के मनुरूप मर्यादित वस्त्र पहनने की प्रेरणा दें ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महामन्त्री तथा आर्य परितिनिधि सभा

पृ. ३ का शेष

आ.प्र.-तेलंगाना के प्रधान श्री विट्ठलराव आर्य जी ने अपने सम्बोधन में कहा कि तप व दीक्षाका हमारे जीवन में अत्यन्त महत्व है। उन्होंने बताया कि हमारी धर्म व संस्कृति पर वर्तमान समय में जो संकट है वह वाममार्गी विचारधारा वाले समूहों द्वारा हो रहा है। श्री विट्ठल राव आर्य जी ने कहा कि विकासवादी नीति युवा पीढ़ी के भोगवादी बनाती है।

श्री शत्रुघ्न कुमार मौर्य जी ने सभा को बताया कि उनकी टीम के प्रयत्नों से उत्तराखण्ड सरकार द्वारा देहरादून के रिस्पना पुल का नाम ''महर्षि दयानन्द सेतु'' कर दिया गया है। देहरादून के इसी स्थान पर ऋषि दयानन्द सन् १८७९ में हरिद्वार से सड़क मार्ग से पहुंचे थे। उन्होंने कहा कि सरकार ने इसी स्थान पर ऋषि दयानन्द की एक आदमकद मूर्ति स्थापित करने का प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिया है। इस प्रस्ताव को शीघ्र ही क्रियान्वित किया जाएगा।

आयोजन के एक प्रमुख वक्ता महन्त श्री वीरेन्द्रानन्द गिरी जी ने ऋषि दयानन्द को अपनी व सब सिद्ध पुरुषों की ओर से कोटि-कोटि नमन एवं प्रणाम निवेदन किया। उन्होंने बताया कि सबसे अधिक शक्ति ओ३म् परमात्मा में है। स्वामी जी ने कहा कि माता में भी शक्ति है। स्वामी जी ने कहा कि यदि आप विश्व वा देश को जानना चाहते हैं तो इसके लिए ऋषि दयानन्द को जानों, ऐसा करके आप विश्व व देश को जान सकेंगे। उन्होंने कहा कि भारत विश्व गुरु था, है और आगे भी रहेगा। स्वामी जी ने कहा कि आत्मा को परमात्मा से जोड़ने वाला देश विश्व में केवल भारत है।

आमन्त्रित पद्मश्री प्राप्त विद्वान डा.बी.के.एस. संजय जी ने अपने विचार प्रस्तुत करते हुए कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती समाज सुधारक थे। उन्होंने हम जैसे साधारण लोगों को भी समाज सुधारक बना दिया है। संजय जी ने परिवर्तन को संसार का नियम बताया। उन्होंने कहा कि मनुष्यों के विचारों में बदलाव शिक्षा के माध्यम से ही आ सकता है। मनुष्य में अच्छी व बुरी आदतें बचपन में ही पड़ती हैं। उन्होंने बच्चों में अच्छी आदतें डालने की प्रेरणा दी जिससे भारत का भविष्य अच्छा हो सके।

बागेशेवर से पधारे श्री गोविन्द सिंह भण्डारी अधिवक्ता ने भी सभा को सम्भोधित किया। उन्होंने आगामी २८-२९ अक्टूबर २०२३ को ज्वालापुर-हरिद्वार में एक आर्य महा-सम्मेलन आयोजित किए जाने की जानकारी दी जिसका आयोजन श्री प्रेमप्रकाश शर्मा जी आदि ऋषिभक्त मिलकर करेंगे। श्री गोविन्द सिंह जी ने अन्य कुछ जानकारियां भी सदस्यों को दीं। इसके बाद आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तरांचल के प्रधान श्री विश्वमित्र आचार्य सभी विद्वानों, अतिथियों एवं श्रोताओं को आज के कार्यक्रम में पधारने और उसे सफल बनाने के लिए धन्यवाद दिया।

वैदिक संस्कृति संगोष्ठि का उद्देश्य वैदिक धर्मियों में निराशा दूर कर वर्तमान परिस्थितियों में उनका मार्गदर्शन करना था। लोगों ने बड़ी संख्या में इस आयोजन में भाग लिया। विद्वानों के उद्‌बोधन एवं श्रोताओं की बड़ी संख्या में उपस्थिति से यह आयोजन श्रोताओं में उत्साह उत्पन्न करने में सफल रहा। यह भी निश्चय किया गया कि समय-समय पर ऐसे आयोजन आयोजित किए जाते रहेंगे और समाज का मार्गदर्शन किया जाता रहेगा। सभा स्थल के बाहर आर्य साहित्य का सस्ते दामों पर वितरण एवं विक्रय भी किया गया। आचार्य डॉ. धनंजय आर्य जी का सफल संचालन कार्यक्रम की एक विशेषता रही। जिन विद्वानों एवं कार्यकर्ताओं ने इस कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग किया वह सब धन्यवाद के पात्र हैं। ओ३म् शम्।

हमने पद का अर्थ 'चरण' किया है, इसका अर्थ (प्राप्ति) भी है। उस मिठास तथा माधुर्य के क्या कहने, जो परमेश्वर की भक्ति और उसके मिलाप से प्राप्त होता है। ऋग्वेद १।१२५।४ में दान देने का आत्मिक सुख बताया गया है-

''यज्ञ करनेवाले की और ही नहीं, यज्ञ करने का निश्चय करनेवाले की ओर भी सुख की नदियाँ तथा आशाओं के नद बहते हैं। दानी की, जनता की भावनाओं को पूर्ण करनेवाले की ओर यश तथा प्रकाश की धाराएँ उमड़ती हैं।''

''जो दान करता है, वह सुख के ऊँचे शिखर पर खड़ा होता है, उसका स्थान देवताओं में होता है। बहता पानी भी उसके लिए घृत का प्रभाव रखना है, उसकी दानशीलता उसे समृद्ध बनाती है।''

''सत्य के मार्ग को भली प्रकार देख, जिस पर साधक, पुण्यात्मा चलते हैं, उन्हीं मार्गों से सुखके लोक को प्राप्त कर ! जहाँ स्थिरचित ईशभक्त, सत्य मार्ग के पथिक सुरक्षित होते हैं। तीसरी (आत्मिक) सुखद अवस्था में स्थिर हो।'' स्वर्गा लोका अमृतेन विष्ठा इषमूर्जं यजमानाय दुह्रम्।

(अ. १८।४।४) यज्ञ करनेवाले को सुख की विभिन्न अनुभूतियाँ, जिनका आधार प्रकाश है, इच्छापूर्वक प्राप्त हों। ''सुख की अनुभूतियाँ जिनमें अमृत भरा है, यज्ञकर्त्ता को सांसारिक एवम् आत्मिक आनन्द देती है।'' ''शक्ति के केन्द्र अंग, जो तेरी इन्द्रियों सहित विद्यमान हैं, वे तेरे शुभकर्मों का केन्द्र होकर मिठास तथा प्रकाश देनेवाले हों।''

ऋग्वेद ९।४।६ का अनुवाद पहले किया जा चुका है। ''ऐ मनुष्य ! तेरे जो पूर्वज हो चुके हैं, और जो उनके पश्चात् विद्यमान हैं उनके लिए सौ धाराओं की भरी घी की नदी चले। अर्थात् जीवितों को खिला और मृतकों का दाह-कर्म कर।

ब्रह्मचारी कहता है-'ब्रह्मचारी की अकसीर, मेरे पास घी की धारा तथा भक्ष्य पदार्थों का रस लाई है। ''जो जीवित हैं, जो मर चुके हैं, जो उत्पन्न हुए (शिशु) हैं, तथा जो पूज्य हैं, उनके लिए मिठास की धाराओवाली घी की भरी नदी बहे। मृतकों का तो शव घृत से ही जलाया जाता है, जीवित आबालवृद्ध की सेवा-शुश्रूषा गृहस्थाश्रम के स्वर्ग में रहने वाले गृहस्थ का कर्त्तव्य है।

Date of Publication 2nd and 17th of every Month, Date of Posting 3rd and 18th of every Month
आर्य जीवन 03-07-2023 Registered-Reg. No. HD/783/2021-23 RNI No. 52990/93

ఆర్య జీవన్

హిందీ-తెలుగు ద్విభాషా పక్ష పత్రిక

Editor : Sri Vithal Rao Arya, M.Sc., L.L.B., Sahityaratna.
Arya Pratinidhi Sabha A.P.-Telangana, Sultan Bazar, Hyderabad-500095.
Phone : 040-24753827, 24756983, Narendra Bhavan : 040 24760030.
Annual Subscription Rs. 250/- సంపాదకులు : విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ.

To,

ब्रह्मचर्य का प्रताप

आदित्य ब्रह्मचारी ऋषिवर देव दयानन्द की उस सभा में बहुत सारे कश्मीरी मुस्लिम पहलवान भी आए थे । वहसभा १० मार्च १८७७ में गुजरानवाला के एक बहुत बड़े मन्दिर परिसर में हुई थी । लगभग ५०० लोगों से परिसर खचाखच भरा था । स्वामी जी ने बोलना शुरू किया-

'हरिसिंह नलवा बहुत बड़ा शूरवीर था, इसका कारण उसका ब्रह्मचर्य रहा होगा, २५-२६ वर्ष तक वह अवश्य ही ब्रह्मचर्य रहा होगा ।' सिंह जैसी यहगर्जना गुजरानवाला में एक बेधड़क संन्यासी कर रहाथा । हरिसिंह नलवा का नाम सुनकर खुसर-फुसर शुरू हो गई थी । जिस हरिसिंह नलवा ने बिलों से निकाल-निकाल कर बड़े-बड़े आक्रान्ताओं को मुर्गा बानाया था, उसकी यह संन्यासी तारीफ़ कर रहा है । स्वामी जी इस खुसर-फुसर को भांप गए । उन्होंने बोलना जारी रखा- 'हलांकि मुझे स्वयं पर थोड़ा भी अभिमान नहीं है, मैं सन्यासी हूँ और किसी भी तरह की लोकैषण मेरे लिए विष तुल्य है । मैं ब्रह्मचर्य की महिमा बताने के उद्देश्य से यह बात कहता हूँ कि मेरी अवस्था इस समय ५२ वर्ष है ोर मेरा ब्रह्मचर्य अखंडित है । मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि जिस किसी को अपने बल का घमंड हो, मैं उसका हाथ पकड़ लेता हूँ, छुड़ा लेवे अथवा मैं अपना हाथ खड़ा करता हूँ, उसे झुका देवे ।'

सभा में सन्नाटा छा गया । किसी में भी चुनौती स्वीकार करने का साहस न हुआ । सूर्य-सम वह युवा संन्यासी अविचलित खड़ा रहा । इस अद्भुत और अनुपम दृश्य को जिस किसी ने भी देखा उसका जीवन धन्य हो गया और उसे ब्रह्मचर्य के प्रताप का साक्षात् प्रमाण मिल गया । संकलनकर्ता :

आदित्य प्रकाश आर्य

आर्य प्रतिनिधि सभा आ.प्र.- तेलंगाना के उपप्रधान श्री हरिकिशन वेदालंकार जी एवं श्री विजयेन्द्र जी, गोशामहल पौधारोपण करते हुए

तपोवन देहरादून में मिट्टी का लेपन कर प्राकृतिक चिकित्सा करवाते हुए तथा अग्निसार प्रक्रिया करते हुए सभा प्रधान प्रो. विट्ठल राव आर्य ।

THE VIEWS & THE NEWS PUBLISHED IN THIS ISSUE MAY NOT NECESSARILY BE AGREEABLE TO THE EDITOR.
Editor : Sri Vithal Rao Arya E-mail : acharyavithal@gmail.com, Mobile : 09849560691.

సంపాదకులు : శ్రీ విఠల్ రావు ఆర్య, ప్రధాన సభ, ఆర్య ప్రతినిధి సభ ఆ.ప్ర. -తెలంగాణ, సుల్తాన్ బజార్, హైదరాబాద్-95. Ph : 040-24753827, E-mail : acharyavithal@gmail.com
संपादक : श्री विट्ठल राव आर्य, प्रधान सभा ने सभा की ओर से आकृति प्रिन्टर्स, चिक्कड़पल्ली में मुद्रित करवा कर प्रकाशित किया ।
प्रकाशक : आर्य प्रतिनिधि सभा, आं.प्र.- तेलंगाना, सुल्तान बाज़ार, हैदराबाद-500 095. Narendra Bhavan Ph : 040 24760030.